मान मन्दिर बरसाना

मासिक पत्रिका, मई २०२३, वर्ष ०७, अंक ०५

मूल्य १०/-

दृश्य : रसमण्डप, गह्वरवन, नित्य सायंकालीन आराधना

अनुक्रमणिका

विषय– सूची पृष्ठ– संख्या

१ भावमयी भक्ति 'श्रीधाम–सेवा'....................०५
२ नित्यलीला–विहार–स्थली 'श्रीगह्वरवाटिका'..........०८
३ वृन्दावन के अंतर्गत ही है 'गह्वरवन'....................१२
४ श्रीधाम का सच्चा स्वरूप..................................१५
५ बरसाना' वृन्दावन से अलग नहीं.........................१८
६ 'ब्रज व निकुञ्ज' की एकरूपता............................१९
७ 'स्त्री' को 'कथा–वाचन' का अधिकार.................२४
८ 'भागवत–धर्म' में सर्वाधिकार............................२७
९ भाव–भक्ति का स्वरूप 'नारी–शक्ति'....................३०
१०गौ–संवर्द्धन' से होगा विश्वगुरु 'भारतवर्ष'..............३३

|| राधे किशोरी दया करो ||

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो |
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो |
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो |
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो |
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो |
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्यो | – *पूज्यश्री बाबामहाराज कृत*

संरक्षक– **श्रीराधामानबिहारीलाल**

प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)**

mob. राधाकांत शास्त्री 9927338666

ब्रजकिशोरदास..........6396322922

(Website :www.maanmandir.org)

(E-mail :info@maanmandir.org)

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८:३० से ९:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:३० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं |

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ–सेवा–यज्ञ में भाग ले |"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें | हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है |

विशेष:– इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्–कृपा के पात्र बनें | हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ | जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत३/७/४१)

अर्थ:– भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म–मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता |

प्रकाशकीय

मानिनी 'श्रीराधा' के निज निवासस्थल 'श्रीधाम बरसाना के मानमन्दिर' (मानलीलास्थल) पर आज भी 'श्रीकृष्णकालीन मानशिला' न केवल दर्शनीय है अपितु साक्षात् 'श्रीकृष्णस्वामिनी' के रूप में ही वह यहाँ विराजमान है। सैकड़ों वर्षों की इस पुरातन स्थली में न जाने कितने महापुरुषों ने अपनी प्राणाराध्या 'श्रीकिशोरीजी' की आराधना कर अपने को कृतार्थ किया होगा। इसी पावन भूमि में गत् ७० वर्षों से अखण्डाराधन तत्पर ब्रजरससरसिक संत प्रवर पद्मश्री 'श्रीरमेशबाबाजीमहाराज' ने निश्चय ही कृष्णस्वामिनी का साक्षात् दर्शन किया होगा तभी तो अविराम उपासना को कभी विराम नहीं मिला। निरीह निष्काम संत की उपासना तो देखो जिनके लिए धन–दौलत अथवा समग्र वैभव तो क्या कभी यह भी कामना नहीं हुई कि हमारे आराध्य हमें दर्शन दें क्योंकि यही है 'तत्सुखसुखिता'। प्रेमी अपने 'प्रेमास्पद' को कभी संकोच में नहीं डालना चाहता। ऐसी स्थिति में दीर्घकालीन सेवित स्थल के जीर्णोद्धार व नवनिर्माण की भी कभी कोई कामना जागृत नहीं हुई परन्तु 'श्रीराधारानी' भला उनके द्वारा अपना ये 'मानमन्दिर' मानलीलास्थल नवसदन के रूप में क्यों नहीं चाहेंगी; उन्हीं की सत्प्रेरणा से प्रारम्भ हुआ है 'मानमन्दिर का नवनिर्माण', जो 'चिरस्थाई रहे' ऐसी विधा से भक्तों की बनाने की जिज्ञासा है। वे (श्रीजी) अपना कार्य स्वयं करती हैं। यह सब इसलिए नहीं लिखा गया कि यहाँ के वैष्णवों को अर्थ–कामना के प्रकारान्तर से कुछ कह रहे हैं अपितु हमारा–आपका, सभी का 'विश्वास' दृढ़ता को प्राप्त हो कि निष्काम भक्तों को यश–प्रदान करने के लिए अथवा उनकी भक्ति की दृढ़ता पर सभी की आस्था हो। परम करुणामयी 'राधिकारानी' स्वयं अपने अनन्य शरणागत भक्तजनों का योगक्षेम धारण करती हैं। 'जहाँ श्रीराधारानी रूठी हैं, उन्हें चरण पकड़कर स्वयं श्रीकृष्ण ने उन्हें मनाया है' ऐसी परमपावनकारी रसमयी श्रीलीलास्थली को आप सब भी भव्य रूप में दर्शन करेंगे।

प्रबन्धक

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

भावमयी भक्ति 'श्रीधाम–सेवा'

बाबाश्री के पदगान (२१/३/२०२३) से संकलित

कुछ लोग मीराबाई के बारे में कहते हैं कि वह दास भाव की भक्ता नहीं थीं, उन्होंने सेवा न तो माँगी और न ही की; तो फिर उनकी भक्ति सिद्ध कैसे हुई ? 'भज् धातु सेवायाम्' – बिना 'सेवा' के भक्ति सिद्ध नहीं होती; न कभी हुई थी, न हुई है और न होगी। जो सेवा से मन चुराता है, उसका न तो कभी भजन हुआ, न है और न ही होगा। इसीलिए सेवा के सम्बन्ध में मीराजी का प्रसिद्ध पद है –

श्याम म्हाने चाकर राखो जी।

इस पद को सुनने, समझने से यह सिद्ध हो जाता है कि चाहे सतयुग हो, चाहे त्रेता अथवा द्वापर और कलियुग हो; 'श्रीमीराजी' अकबर और तानसेन के समय में हुई थीं किन्तु उन्होंने केवल सेवा चाही और सेवा उनको मिली, उसी सेवा के प्रताप से संसार में 'मीरा' सूर्य बन गयीं। 'मीरा' शब्द का अर्थ होता है – सूर्य। 'मीरा' जैसी न कोई हुई, न है और भविष्य में होने के बारे में पता नहीं; जिस पर श्रीजी कृपा करती हैं, वह बन जाता है। इस पद में मीरा ने अपने इष्ट 'गिरधर गोपाल' से केवल चाकरी माँगी है – "श्याम म्हाने चाकर राखो जी, गिरधारी लाला चाकर राखो जी।" मीराजी से प्रश्न किया गया कि तुम क्या चाकरी करोगी ? 'चाकरी' माने धाम की सेवा, जिसको स्वयं श्रीजी भी चाहती हैं, श्यामसुन्दर भी चाहते हैं। इस बात को वृन्दावन के रसिकाचार्य श्रीभट्टदेवाचार्यजी ने भी कहा है –

रे मन वृन्दाविपिन निहार।

आगे उन्होंने स्पष्ट कहा –

विपिन राज सीमा के बाहर, हरिहू को न निहार ॥

इस धाम के बाहर भगवान् को भी मत देखना।

यद्यपि मिले कोटि चिन्तामणि, तदपि न हाथ पसार।

धाम के बाहर जाने के बदले में यदि एक–दो नहीं, करोड़ों चिन्तामणि भी उपलब्ध हों तो उनके लिए अपना हाथ भी मत पसारना।

जय श्रीभट्ट धूर धूसर तन, यह आशा उर धार ॥

केवल धाम की सेवा करना, धाम में रहना और इसके आगे 'श्यामसुन्दर' को भी मत चाहना। करोड़ों चिन्तामणि मिलें तो मिलती रहें, उनके लिए इच्छा करना तो दूर है, हाथ भी मत फैलाना।

मैं (बाबाश्री) न कोई भक्त था, न हूँ और न होऊँगा किन्तु इतना अवश्य है कि न मैंने पैसा छुआ, न छूता हूँ और न छुऊँगा। यद्यपि न मेरे पास संयम है, न नियम है, न भजन है, न कोई साधन है, कुछ भी नहीं है किन्तु मैं किसी से पैसा नहीं लेता हूँ और न किसी के आगे हाथ फैलाता हूँ, राधारानी की कृपा से चाहता भी नहीं हूँ कि कोई मुझे पैसा दे दे।

श्याम म्हाने चाकर राखो जी।

श्रीराधे मोहे चाकर राखो जी ॥

येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेन

एकःक्रीडनार्थम् द्विधाभूत्।

यह उपनिषद् का श्लोक है, जिसका अर्थ है – जो राधा हैं, वही कृष्ण हैं। 'रस की लीला' के लिए ही दोनों अलग हो गये हैं, दोनों रस के समुद्र हैं। 'द्विधा' माने दोनों राधारानी और श्रीकृष्ण। इस प्रकार युगल उपासना वेद–उपनिषदों में भी बतायी गयी है। 'द्विधा' शब्द का उपनिषद् में प्रयोग किया गया है – राधा और कृष्ण।

श्याम म्हाने चाकर राखो जी।

'चाकर' किसको कहते हैं ? 'चाकर' माने सेवक अथवा टहलुआ, जो सारी सेवा करता है, घर को स्वच्छ रखेगा, बर्तन साफ़ करेगा, चरण दबायेगा। अब

मीराजी राधारानी और श्यामसुन्दर की चाकर बनना चाहती हैं तो श्रीजी–ठाकुरजी का घर क्या है, उनका घर है – 'वृन्दावन' मीराजी अपने प्यारे गिरधारीलालजी से कहती हैं कि मुझे वृन्दावन की प्रत्येक कुञ्ज की चाकरी दे दो, हर गली की चाकरी दे दो; ऐसी चाकर मैं बनना चाहती हूँ ।

चाकर रहसूँ बाग़ लगासूँ, नित उठ दर्शन पासूँ ।

धाम में चाकर बनने पर नित्य ही युगल सरकार के दर्शन होंगे ।

वृन्दावन की कुञ्ज गलिन में ।
गह्वरवन की कुञ्ज गलिन में ॥

अब 'वृन्दावन' शहर बन गया है, वहाँ कुञ्जें नहीं रहीं; यह भगवान् की लीला है । वर्तमान समय में कुञ्जें केवल गह्वरवन में हैं । अन्य स्थानों पर कुञ्जें न थीं, न हैं और भविष्य में उनके होने का कोई पता नहीं । गह्वरवन में ऐसी कुञ्जें हैं कि 'जिसका सिर कभी झुकता न हो' वह यदि गह्वरवन की सघन कुञ्जों में होकर जायेगा तो उसको अपना सिर झुकाना ही पड़ेगा, कुञ्जों को प्रणाम करना ही पड़ेगा । गह्वरवन में दिव्य रास मण्डल है, जब श्रीजी अपनी कृपा से उसे दिखायेंगी; तब वह दिखेगा । गह्वरवन की कुञ्ज गलियों में कहीं दिखेगा कि यहाँ हींस की झाड़ है किन्तु वह हींस नहीं है । परम रसिक सन्त व्यासजी महाराज ने लिखा है –

रसिकन पारिजात यह दीखत, विमुखन ढाक पीलूख ।
कोटि मुक्ति सुख होत, गूखरू जबै लगै गड़ि पायन ।

करोड़ों मुक्ति के समान सुख होता है, जब ब्रज के काँटे, हींस आदि शरीर में चुभते हैं; ऐसी श्रद्धा हम लोगों में कहाँ है ? ऐसी श्रद्धा यदि ब्रज की कुञ्जों के प्रति हो जाए तो ये साक्षात् पारिजात दिखायी पड़ेंगे और केवल पारिजात ही नहीं बल्कि इन्हीं कुञ्जों में राधारानी और श्यामसुन्दर खेलते हुए दिखायी देंगे ।

वृन्दावन के वृक्ष को, मरम न जाने कोय ।
डाल–डाल अरु पात–पात से, राधे राधे होय ॥

यहाँ की हर लता राधा–राधा रटती है । एक–एक पत्ता, एक–एक डाल राधा–राधा गाती है । बिना 'राधानाम–गान' के वह ब्रज की लता, ब्रज की कुञ्ज ही नहीं है । यदि रसिकों की वाणी मानते हो तो विश्वास करो कि ब्रज की हर लता, हर वृक्ष राधा–राधा रटते हैं ।

ब्रज की लता–पता मोहि कीजै ।
श्रीराधा–राधा यह मुख, 'हरिश्चन्द्र' को दीजै ॥

अब तक जो भी ब्रज में सच्चे रसिक महात्मा हुए हैं, उन्होंने लिखा है – हे राधे ! हमको ब्रज की कोई लता–पता ही बना दीजिये । 'ब्रज का एक–एक पत्ता, एक–एक डाल' सब 'राधा–राधा' गाते हैं; यहाँ काँटे नहीं हैं, सब 'राधा–राधा' है ।

गह्वरवन की कुञ्ज गलिन में, तेरी लीला गासूँ ।

रसिकों ने कहा है –

हम चाकर राधारानी के ।

चाहे राधा नाम लो, चाहे गिरधारीलाल नाम लो; चाकरी करनी ही पड़ेगी । चाकरी करने वाला ही भक्त है । 'सेवा' करने वाला ही भक्त था, है और रहेगा और जिसके भाग्य में सेवा नहीं है, उसको कुछ नहीं मिलेगा । इसीलिए मीराजी ने कहा –

गिरधारी लाला चाकर राखो जी ।

चाकरी में क्या मिलेगा ? मीराजी ने कहा कि सब कुछ मिलेगा –

'चाकरी में दर्शन पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची ।'

चाकरी में ठाकुरजी का दर्शन मिलेगा । आज भी जो सच्चे रसिक हैं, उनको ब्रज के वृक्ष पारिजात दिखाई पड़ेंगे और हम जैसे विमुखों को वे ढाक, पीलू आदि के रूप में दिखेंगे ।

'कोटि गाय बामन हत शाखा, तोड़त हरिहि बिदूख ।'

यदि ब्रज की एक डाल भी तोड़ते हो तो करोड़ों गाय और करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या के समान पाप लगेगा; ऐसा सभी रसिकों ने कहा है। निम्बार्क सम्प्रदाय के रसिकाचार्य श्रीभट्टदेवजी ने कहा है –

युगल किशोर हमारे ठाकुर।
जनम–जनम हम इनके चाकर ॥

अनादिकाल से अनन्तकाल तक हम ठाकुर श्रीयुगलकिशोरजी (श्रीराधामाधव) के चाकर रहेंगे।

हे नाथ ! हमको ऐसी सेवा दे दो, ऐसी भक्ति दे दो।

चाकरी में दर्शन पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची।

चाकरी (सेवा) के प्रभाव से ठाकुरजी का दर्शन और उनका अखण्ड स्मरण होता है। दुनिया में तो चाकरी करने पर द्रव्य (धन) मिलता है और मनुष्य धनी बन जाता है तथा जागीर खरीदता है। मीराजी कहती हैं कि अपने गिरधारी की चाकरी करने पर मैं उनका दर्शन प्राप्त करूँगी तो उनसे पूछा गया कि चाकरी का वेतन क्या लोगी तो उन्होंने कहा – 'सुमिरन पाऊँ खरची' मुझे पैसा नहीं अपितु अपने गिरधारी (अपने प्रभु) का दर्शन मिलेगा। प्रभु–दर्शन रूपी दिव्य धन प्राप्त करने के बाद मैं जागीर खरीदूँगी और धनी बन जाऊँगी।

भाव भगति जागीरी पाऊँ।

श्रीभट्टजी ने लिखा है – 'जुगल किशोर हमारे ठाकुर।' दोनों श्रीराधामाधव के दर्शन मिलेंगे, एक के नहीं। मीराजी कहती हैं कि चाकरी करने के कारण अनन्तकाल के लिए मैं जागीर प्राप्त कर लूँगी। जागीरदार सबसे बड़ा धनी व्यक्ति होता है।

भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बाताँ सरसी।

मुझे चाकरी (सेवा करने) से तीनों बातें एक साथ मिलेंगी – दर्शन, स्मरण और भाव–भक्ति; भगवत्स्मरण रूपी धन से भावभक्ति की जागीरी मुझे मिल जाएगी। इसलिए हे गिरधारी ! मुझे सेवा दे दो। तीनों बातें मीराजी को एक साथ मिल गयीं, ऐसी भक्ति उन्होंने की, तभी तो उन्होंने कहा –

श्याम म्हाने चाकर राखो जी।

हम मीराजी का पक्ष नहीं कर रहे। अनेक सम्प्रदाय हुए हैं, उनमें बड़े–बड़े महात्मा, बड़े–बड़े रसिक हुए हैं किन्तु भारतवर्ष में जितना नाम (यश) मीराजी का है, शायद उतना किसी का नहीं है। प्रायः लोग अपने सम्प्रदाय तक ही सीमित हैं, एक सम्प्रदाय का अनुयायी दूसरे सम्प्रदाय से चिढ़ता है अथवा कम प्रेम रखता है किन्तु 'मीरा' की महिमा और उनके पद को भारत में सब लोग गाते हैं। कुछ संकीर्ण सम्प्रदायी लोग 'मीराजी' से चिढ़ते हैं लेकिन चिढ़ते रहें। मीराजी का जो नाम है, उनकी जो प्रसिद्धि है, ऐसी प्रसिद्धि किसी भी सम्प्रदाय के आचार्य अथवा महापुरुष की न थी, न है और हो सकती है यदि मीराजी जैसी प्रीति हो।

'भाव भगति जागीरी पाऊँ।'

भक्ति और भाव की जागीरी 'श्रीमीराजी' को मिली। अपने मन में यदि कोई स्वयं को बड़ा समझता है और सोचता है कि हमारे सम्प्रदाय अथवा संस्था में विशेष उपासना है, हम रसिक हैं, हमारे यहाँ रसोपासना है। ठीक है, 'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू' बन जाओ किन्तु सारा संसार जानता है कि 'भाव–भक्ति' कहाँ है ? तुम्हारे सम्प्रदाय और संस्था को सीमित लोग ही जानेंगे और स्वीकार करेंगे किन्तु 'मीराबाईजी' को सारा संसार जानता और मानता है।

गौ–सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का Account number दिया जा रहा है –

SHRI MATAJI GAUSHALA,
GAHVARVAN,BARSANA, MATHURA
Bank – Axis Bank Ltd
A/C – 915010000494364
IFSC – UTIB0001058 BRANCH – KOSI KALAN,
MOB. NO. – 9927916699

नित्यलीला–विहार–स्थली 'श्रीगह्वरवाटिका'

बाबाश्री के पदगान (२१/३/२०२३) से संकलित

देखो, हम पक्षपात नहीं करते हैं क्योंकि हम (श्रीबाबामहाराज) भी उन्हीं रसिकों के अनुयायी हैं। हमारे सद्गुरुदेव श्रीप्रियाशरणजीमहाराज निम्बार्की (निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुगत) थे, इसलिए हम भी निम्बार्की होते हुए भी यह घोषणा करते हैं कि चाहे निम्बार्की हैं, चाहे हरिवंशी (श्रीहितहरिवंशमहाप्रभु एवं उनके अनुगत वैष्णववृन्द) हैं, चाहे हरिदासी (स्वामी श्रीहरिदासजी एवं उनके अनुगत वैष्णववृन्द) हैं एवं अन्य दूसरे वैष्णव सम्प्रदाय हैं; उनमें बड़े–बड़े रसिक हुए हैं, ये सभी महान हैं, परम पूज्य हैं; किन्तु मीराजी की तरह 'प्रसिद्धि व भाव–भक्ति की जागीरी' अब तक संसार में दिखायी नहीं पड़ती। श्रीमीराबाईजी सभी सम्प्रदायों से शून्य (सम्प्रदायों से रहित) किन्तु भावभक्ति के सन्दर्भ में शून्य नहीं थीं। केवल कृष्ण का उपासक होना एक भूल है। 'भगवान्' गिरवर धारण करते हैं, गिरिराज गोवर्धन वे कैसे धारण करते हैं –

कछु माखन को बल बढ़्यो, कछू गोपन करी सहाय।
राधेजू की कृपा ते, गिरिवर लीनो उठाय॥

सारा संसार, समस्त ब्रजवासी, प्रत्येक व्यक्ति यही गाता है कि 'राधारानी' की कृपा से ही श्रीकृष्ण ने गोवर्धन धारण किया। साम्प्रदायिक संकीर्णताओं ने लोगों को 'मीराजी' से दूर कर दिया। संकीर्णता से ग्रसित लोग मीराजी के बारे में अपराध भरी बातें कहते हैं; इसका दण्ड यह मिला कि ऐसी बात कहने वालों को मीराजी से दूर होना पड़ा।

मीराजी कहती हैं कि चाकरी करने पर मुझे प्यारे श्यामसुन्दर का दर्शन मिलेगा। कृष्ण रूप और राधा रूप अलग नहीं हैं। **'मोर मुकुट पीताम्बर सोहै'**

यह पीताम्बर क्या है ? रसिकों ने बताया है कि श्यामसुन्दर पीला वस्त्र धारण इसलिए करते हैं क्योंकि ऐसा ही राधारानी का रंग है, इसलिए श्यामसुन्दर अपने दिव्य अंग में 'श्रीजी' को धारण करते हैं। बिना पीताम्बर के श्यामसुन्दर न कभी थे, न हैं और न ही होंगे। राधारानी नीलाम्बरी हैं, वे नीली साड़ी पहनती हैं। श्यामसुन्दर नीले हैं, इसलिए 'राधारानी' श्यामसुन्दर को धारण करती हैं। श्रीराधामाधव का अखण्ड संयोग है। **मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल वैजयंती माला।**

वैजयन्ती माला में पाँच पुष्प या पाँच रंग होते हैं।

'वृन्दावन में धेनु चरावै' आजकल के रसिक 'गोपाल' नाम से चिढ़ते हैं, वे 'गोपाल' नहीं कहते हैं, 'गोविन्द' नहीं कहते हैं; इन लोगों ने निकुञ्ज में 'गायों' से परहेज माना है; यह बात भाव–विरुद्ध और शास्त्र–विरुद्ध है, ऐसा हम डंके की चोट पर कहते हैं; ये सब संकीर्णतायें समाज से दूर होनी चाहिए किन्तु ये दूर नहीं हो रही हैं क्योंकि साम्प्रदायिक संकीर्णतायें इतनी बढ़ गयी हैं कि यदि भगवान् भी अवतार लें तो भी शायद इनका दूर होना कठिन है। 'गो' माने इन्द्रियाँ, भक्तों की इन्द्रियों का पोषण करने वाले हैं – श्यामसुन्दर, बिहारीजी; वे सच्चे गोपाल हैं, सच्चे गोविन्द हैं।

वृन्दावन में गाय चरावें।

गाः पालयति इति गोपालः।

गाः विन्दति इति गोविन्दः॥

गाय पालने वाला ही गोपाल है। 'गो' माने भक्तों की इन्द्रियाँ। स्वामीहरिदासजी कृत केलिमाल में प्रसिद्ध पद है – **'प्यारीजू आगे चल, आगे चल गह्वर वन भीतर'** बाँकेबिहारीजी 'श्यामा प्यारीजू' को इसी गह्वरवन का दर्शन करा रहे हैं और आगे कहते हैं – **'जहाँ बोलै कोयल री।'** उनकी बात सुनकर श्यामाजू पूछती हैं कि मैं गह्वरवन के भीतर क्यों चलूँ ? तो बिहारीजी कहते हैं –

'अति ही विचित्र फूल–पत्रन की सेज्या सँवारी, तहाँ तू सोइल री। छिन–छिन पल–पल तेरी ये कहानी, तू मग

जोइल री । श्रीहरिदास के स्वामी श्यामा कुंजबिहारी, कहत छबीलो काम रस भोइल री ॥'

ये वह गह्वरवन है, जहाँ नित्य विहार था, है और अनन्त काल तक रहेगा । चाहे तुम कितना भी बरसाने की बुराई करो और कहो कि हमारा ठाकुर तो वृन्दावन में है, हमारा ठाकुर निधिवन में है । अरे नहीं, हमारा ठाकुर गह्वरवन में है; ऐसा तुम्हारे आचार्य कह रहे हैं, फिर उसको सीमा में क्यों बाँधते हो ? सीमा को छोड़कर उठो और फिर तुमको दिखायी पड़ेगी 'राधारानी की लीला', गह्वरवन में उनकी नित्यलीला होती है । बड़ा आश्चर्य है कि स्वामी हरिदासजी ने अपने उपरोक्त सुप्रसिद्ध पद में 'गह्वरवन की लीला' गाई है किन्तु वृन्दावन वालों ने उसी स्थान (एक सीमित क्षेत्र) में निधिवन बना रखा है और वे लोग गह्वरवन में नहीं आते हैं (गह्वरवन को श्यामा–श्याम के नित्य विहार का स्थल नहीं मानते हैं), जबकि नित्य विहार बरसाने, गह्वरवन में है । विशाखा सखी के अवतार राधावल्लभीय आचार्य श्रीहरिरामव्यासजी का प्रसिद्ध पद है –

सुभग गोरी के गोरे पाँय । धनि वृषभानु धन्य बरसानो, धनि राधा की माय ॥

जहाँ प्रगटी नटनागरि खेलत, पति सों रति पछताय ।

श्याम काम बस जिनहि हाथ गहि, राखत कंठ लगाय ॥

कोटि चन्द्र नखमणि पर वारौं, गति पर हंस के राय ।

नूपुर धुन पर मुरली वारौं, जावक पर ब्रजराय ॥

जाके परस सरस वृन्दावन, बरसति रसन अघाय ।

ताके शरण रहत काको डर, कहत व्यास समुझाय ॥

नित्य–निरन्तर बरसाना–गह्वरवनवासिनी श्रीराधारानी के चरणकमलों से ही सम्पूर्ण ब्रज–वृन्दावन में रस प्रसरित (रस–वर्षण) होने से परम रसमय श्रीब्रजमण्डल धाम बन गया है । बड़ी ख्याति है कि श्यामसुन्दर वंशी बजाते हैं, वंशीधर हैं, जड़–चेतन समस्त भूतों को, अखिल ब्रह्माण्ड को अपनी मधुरातिमधुर वंशी की तान से मोहित कर लेते हैं किन्तु व्यासजी महाराज कहते हैं कि राधारानी के नूपुर के आगे वंशी को न्यौछावर कर दो, श्रीजी के नूपुर के समक्ष वंशी कुछ नहीं है । 'जावक पर ब्रजराय' – चाहे बिहारीजी बड़े सुन्दर हैं, बड़े रसिक हैं किन्तु राधारानी के यावक (महावर) पर बिहारीजी को हमने न्यौछावर कर दिया है । ये महत्वपूर्ण विषय है, निकुञ्ज की चर्चा है, यदि इसको नहीं जानोगे तो संकीर्णताओं में फँस जाओगे । श्यामसुन्दर की मुरली तीनों लोकों में विख्यात है । तीनों लोकों में ऐसा कोई भी नहीं है, जो मुरलीमनोहर की मुरली की मोहकता से अनजान हो, इसीलिए उनके मुरलीधर, वंशीधर आदि अनेक नाम हैं किन्तु यहाँ गह्वरवन में ऐसा कुछ नहीं है, गह्वर वन में मुरलीधर–वंशीधर आदि सब चले गये क्योंकि 'कोटि चन्द्र नख मणि पर वारौं' यह व्यासजी का पद है, मेरा पद नहीं है । रसिकत्रयी – वृन्दावन के सबसे प्रमुख तीन रसिक महापुरुषों में हैं स्वामी श्रीहरिदासजी, श्रीहितहरिवंशजी महाराज और श्रीहरिराम व्यासजी । व्यासजीमहाराज कहते हैं कि तीनों लोकों में श्यामसुन्दर की वंशी का डंका पिट गया किन्तु श्रीराधारानी के नूपुर के आगे मैंने तो श्यामसुन्दर को न्यौछावर कर दिया । सातों स्वर, बाईस श्रुतियों की उत्पत्ति मुरली से होती है । संगीतशास्त्र की उत्पत्ति श्रीजी के नूपुर से होती है । राधारानी की कृपा से हम लोग उस बरसाने, उस गह्वरवन में हैं, जिसका वर्णन रसिकाचार्यों ने किया है । स्वामी हरिदासजी द्वारा रचित प्रसिद्ध वाणी ग्रन्थ केलिमाल में उन्होंने गह्वरवन का वर्णन किया है, इसी प्रकार श्रीहितहरिवंश महाप्रभु ने हित चतुरासीजी में वर्णन किया है – **देख सखी राधा पिय केलि ।**

ये दोउ खोर खिरक गिरि गह्वर, बिहरत कुँवरि कंठ भुज मेलि ॥

आजकल के रसिक पता नहीं क्यों अपनेआप को हरिदासी और हरिवंशी कहते हैं, जबकि अपने आचार्यों की वाणी में कही हुई बात को ही नहीं मानते हैं । श्रीहरिवंशजी द्वारा कथित उपरोक्त पद के अनुसार नित्य विहार के ये

स्थल बरसाने में ही हैं जैसे खोर – साँकरी खोर, खिरक – वृषभानुखिरक, जिस पर लोगों ने अनधिकृत रूप से कब्ज़ा कर लिया था, 'मानमन्दिर' की ओर से यह मामला कोर्ट में भेज दिये जाने पर जीत हो गई और कोर्ट ने घोषित कर दिया कि यह खिरक 'वृषभानुजी' का है। इसी प्रकार गिरि – ब्रह्माचल पर्वत तथा गह्वर अर्थात् गह्वरवन, ये कहाँ हैं, पूर्णतया स्पष्ट है कि ये स्थल बरसाने में हैं। श्रीहरिवंशमहाराजजी के अनुसार खोर, खिरक, गिरि, गह्वर – इन चारों स्थानों पर राधारानी और श्रीकृष्ण विहार करते हैं। इस बात को सारा संसार जानता है। नित्य विहार बरसाने में, गह्वर वन में है। आजकल का छोटा सा वृन्दावन, जो अब नगर बन गया है, वहाँ नित्य विहार नहीं है। नित्यविहार बरसाने के गह्वरवन में सदा से था, है और रहेगा क्योंकि यहाँ स्थित ब्रह्माचल पर्वत को तोड़कर सड़क नहीं बनायी जा सकती है और न यहाँ मोटर–गाड़ियाँ चल सकती हैं। यहाँ ऐसा नित्य विहार है, जो न कभी मिटा, न मिट सकता है और न कभी मिटेगा। गह्वरवन में स्थित पहाड़ को कौन तोड़ सकता है ? पूरे पहाड़ को तोड़कर उसे समतल करके उस पर सड़क बनाने वाला दुनिया में कोई नहीं है। "देख सखी राधा पिय केलि। ये दोऊ खोर खिरक गिरि गह्वर, बिहरत कुँवर कंठ भुज मेलि ॥" इस पद की रचना मेरे द्वारा नहीं की गयी, श्री राधा चरण प्रधान उपासना के प्रवर्तक श्री हित हरिवंशजी महाराज के द्वारा रचित यह पद है। इस पद में स्पष्ट रूप से हिताचार्यजी ने राधा–पिय केलि अर्थात् राधा माधव के नित्य विहार के ये चार स्थल माने हैं – खोर (साँकरी खोर) , खिरक (वृषभानु खिरक), गिरि (ब्रह्माचल पर्वत) और गह्वर (गह्वरवन) – ये चार स्थल बरसाने में ही हैं; उस शहर वृन्दावन में नित्यविहार के ये स्थल न कभी थे, न हैं और न कभी होंगे। मैंने नहीं बल्कि हरिवंश महाप्रभु ने इसे डंके की चोट पर कहा है। इन्हीं चारों स्थानों पर नित्य विहार होता है। **"ये दोऊ नवल किशोर रूप निधि, बिटप तमाल कनक मनो बेलि। अधर अदन चुम्बन परिरम्भन, तन पुलकित आनन्द रस झेलि ॥ पट बंधन कंचुकि कुच परसत, कोप कपट निरखत कर बेलि। जय श्री हित हरिवंश लाल रस लम्पट, धाय धरत उर बीचि सकेलि ॥"** ये मैंने नहीं कहा है, महान रसिकाचार्यों की यह वाणी है। तुम्हारे आचार्यों ने ऐसा कहा है। स्वामी हरिदासजी ने कहा है – **'प्यारीजू आगे चल गह्वरवन भीतर, जहाँ बोलै कोयल री।'** राधारानी ने बिहारीजी से पूछा कि कहाँ चलें तो उन्होंने कहा – 'गह्वरवन' इसी (बरसाने के) गह्वरवन में चलिए, जहाँ कोकिलायें मधुर स्वर से गायन कर रही हैं। इन महान रसिकाचार्यों की वाणी से पूर्णतया स्पष्ट है कि श्यामा–श्याम का नित्य विहार वृन्दावन में नहीं है, गह्वर वन में है। चाहे तुम मानो अथवा नहीं मानो। तुम यदि इसे नहीं मानते हो तो यह तुम्हारे हठ का परिचायक है किन्तु तुम्हारे आचार्य इसे मानते हैं। अब यदि तुम अपने आचार्यों की वाणी को ही नहीं मानते हो तो फिर क्या कहा जाये ? इसका अभिप्राय यही हुआ कि तुम रसिक नहीं अपितु नास्तिक हो। जो अपने आचार्यों की वाणी को नहीं मानता है, वह नास्तिक है। प्रिया–प्रियतम का गह्वर वन का सा नित्य विहार न था, न है और न होगा। ये लीला कहाँ हो रही है ? सखियाँ कहती हैं – 'देख सखी राधा पिय केलि' हे देवियो ! राधा–पिय की केलि देखना हो तो इन स्थानों (साँकरी खोर, वृषभानु खिरक, ब्रह्माचल पर्वत, गह्वरवन) में जाओ; इन चार स्थानों पर श्रीराधामाधव का नित्य विहार मिलेगा। ब्रज में खोर कहाँ है ? वह है बरसाने की साँकरी खोर, खिरक कहाँ है, वह भी बरसाने में है – वृषभानु खिरक अथवा वृषभानु खेरा, गिरि अर्थात् पर्वत कहाँ है, नगर रूपी वृन्दावन में नित्य विहार का हल्ला मचाने वालों, यह बताओ कि क्या उस शहर वृन्दावन में कोई गिरि अर्थात् पर्वत (पहाड़) है, यदि है तो बरसाने में ब्रह्मगिरि,

ब्रह्माचल पर्वत है। इसी प्रकार गह्वर कहाँ है ? ये है बरसाने में स्थित गह्वर वन। तुम लोग भले ही सेवाकुञ्ज बनाओ, निधिवन बनाओ किन्तु जो विशेषता गह्वरवन में है, वह सेवाकुञ्ज और निधिवन में नहीं हो सकती है। इस सत्य को वृन्दावन के आजकल के संकीर्ण साम्प्रदायिक लोग नहीं मानेंगे। न मानें, वे अपने घर में रहें और हम अपने घर में। हम इन सब अति आवश्यक तथ्यों को मानमन्दिर की साध्वियों को बता रहे हैं कि नित्यविहार के चक्कर में तुम इस 'गह्वरवन' को छोड़कर संकीर्णता युक्त प्रवचनों के मायाजाल में भटककर 'वृन्दावन' शहर में मत जाना। हमने जो कुछ कहा है, उसके पीछे वृन्दावन के रसिक कहे जाने वाले सम्प्रदायों के मूल आचार्यों की वाणी का प्रमाण है। स्वयं को हरिदासी और हरिवंशी कहने वाले आधुनिक रसिक अपने ही आचार्य स्वामी हरिदासजी और हितहरिवंश महाप्रभु की वाणी को नहीं मानते, अतः ये अपने सम्प्रदाय और उनके मूल आचार्य के अनुगत नहीं हैं, ये लोग नास्तिक हैं। 'नास्तिक' माने – न + अस्ति अर्थात् आचार्यों द्वारा कथित इन स्थानों पर राधारानी–श्यामसुन्दर नहीं हैं (उनका नित्य विहार नहीं होता); ऐसा जो मानता है, वह नास्तिक है। अब चाहे तुम तिलक लगाओ, छाप लगाओ अथवा कुछ भी कर लो किन्तु जो लोग गह्वर वन को नहीं मानते, वे नास्तिक हैं। गह्वरवन की लीला को स्वामी हरिदासजी ने गाया है, श्रीहितहरिवंशजी महाराज ने गाया है। सभी प्राचीन रसिकाचार्य गह्वर वन की लीला को गाते हैं और शहर वृन्दावन के आधुनिक रसिक गह्वर वन को अलग बताते हुए कहते हैं कि यह बरसाने में है, इसलिए वहाँ नित्य विहार नहीं है। वृन्दावन में इस तरह की संकीर्ण और मनगढ़न्त बातों का भ्रमजाल बहुत फैला हुआ है। यह अविद्या है, अंधकार है। वह वृन्दावन, जो शहर है, जहाँ मोटर–गाड़ियाँ चलती हैं, उससे बहुत श्रेष्ठ दिव्य गह्वरवन है, उसकी हम चर्चा कर रहे हैं।

बीस कोस वृन्दा विपिन, पुर वृषभानु उदार।
तामें गह्वर वाटिका, जामें नित्य विहार॥

शास्त्र के अनुसार बीस कोस (साठ किमी) का व्यापक वृन्दावन है, आजकल का शहर बन गया वृन्दावन भी बीस कोस के विस्तृत वृन्दावन की सीमा में है किन्तु वही सीमित नगर वृन्दावन नहीं है। बीस कोस के वृन्दावन में वृषभानुपुर अर्थात् बरसाना सबसे अधिक उदार है और उसमें श्रीजी की गह्वरवाटिका (गह्वरवन) है, जो नित्यविहार की स्थली है। लोगों ने अविद्या फैला रखी है कि वृन्दावन जो कि शहर है, वहाँ राधामाधव का नित्य विहार होता है। हम किसी को साम्प्रदायिक नहीं बना रहे हैं, हम मान मन्दिर की साध्वियों से यह बात इसलिए कह रहे हैं क्योंकि तुम लोग राधारानी की कृपा से बरसाना में हो और गह्वर वन में तुम लोग नृत्य करती हो। तुम्हें अपने ऊपर हुई श्रीजी की कृपा का गौरव रखना चाहिए कि हम गह्वरवन में हैं, जो नित्यविहार की स्थली है। हम जो कुछ कह रहे हैं, प्रमाण से कह रहे हैं, मनमाने ढंग से हम कुछ नहीं कह रहे हैं, अपने मन से हम एक शब्द भी नहीं बोल रहे हैं। एक शब्द भी यदि अपने मन के अनुसार गलत बोलेंगे तो हम पापी हैं, अपराधी हैं, सभा में हम स्वयं अपना अपराध स्वीकार करेंगे किन्तु यहाँ तुम सबके ऊपर राधारानी ने जो कृपा किया तो तुम लोगों का गौरव हम बढ़ा रहे हैं। राधारानी और श्यामसुन्दर ने तुम लोगों को गह्वरवन में नाचने की आज्ञा दी है। तुम लोग गह्वरवन में रह रही हो, इसलिए तुम्हें इस कृपा का गौरव समझना चाहिए। ये हमारी कही बातें नहीं हैं। ऐसा रसिक त्रयी – हरिवंशजी, स्वामी हरिदासजी और हरिराम व्यासजी ने कहा है और बड़े ही आश्चर्य और दुःख का विषय है कि आजकल इनके सम्प्रदाय के लोग अपने आचार्यों की ही बात को नहीं मानते हैं और हम लोग जो नित्य गह्वरवन में रहते हैं, उनके बारे में अपने ही आचार्यों के प्रति अश्रद्धालु ये नास्तिक लोग कहते हैं कि ये बरसाने में रहते हैं, नित्य विहार के स्थान में नहीं रहते हैं। अरे, तिलक लगाने से और अपने–आप ही रसिक बनने से न तुम रसिक थे, न हो और न बन सकोगे; जब राधारानी रसिक बनायेंगी, तब तुम बनोगे।

वृन्दावन के अंतर्गत ही है 'गह्वरवन'

बाबाश्री के पदगान (२१/३/२०२३) से संकलित

श्रीराधारानी के नित्य विहार का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थल है – श्रीगह्वरवन, श्रीवंशीअलीजी महाराज ने इसकी महिमा का वर्णन किया है –

यत्र गह्वरकं नाम वनं द्वन्द्वमनोहरम् ।
नित्यकेलिविलासेन निर्मितं राधया स्वयम् ॥

(श्रीवृषभानुपुरशतक – ७)

जिस बरसाने में 'गह्वरवन' नामक सुन्दर वन है, जो अपनी अद्भुत शोभा से युगल सरकार श्रीराधा-माधव के मन का भी हरण करने वाला है, इसको स्वयं श्रीराधारानी ने अपने केलि-विलास से बनाया है। अपने विलास से उन्होंने यहाँ की लताओं को बनाया है। शंका होती है कि विलास से कैसे बनाया तो इसका प्रमाण है श्रीराधारानी के अद्वितीय यश से भरपूर ग्रन्थ श्रीराधासुधानिधि का प्रमाण –

राधाकरावचित-पल्लव-वल्लरीके
राधापदाङ्क-विलसन्-मधुरस्थलीके ।
राधायशो-मुखर-मत्त-खगावलीके
राधा-विहार-विपिने रमतां मनो मे ॥

(श्रीराधासुधानिधि –१८)

हम यहाँ रहने के योग्य तो नहीं थे किन्तु अपनी विलक्षण कृपा से राधारानी ने हमें यहाँ लाकर बैठा दिया है । हम जैसा अयोग्य संसार में न कोई था, न है और न कोई होगा। यह राधारानी की दया का सबसे बड़ा नमूना है कि उन्होंने मुझ जैसे संसार के सबसे अयोग्य व्यक्ति को अपने गह्वरवन में लाकर बिठा दिया। क्या यह दया नहीं है ? यह तो श्रीजी की असीम दया है। आजकल के संकीर्ण रसिक 'गिरधारी' नाम तक से चिढ़ते हैं, जबकि 'गिरधारी' नाम का तो राधासुधानिधि में भी उल्लेख किया गया है – **श्रीगोवर्धन एक एव भवता पाणौ प्रयत्नाद् धृतो- राधावर्ष्मणि हेमशैलयुगले दृष्टेऽपि ते स्याद् भयम् । तद् गोपेन्द्रकुमार मा कुरु वृथा परीहासतः कर्ह्येवं वृषभानुनन्दिनी तव प्रेयांसमाभाषये ॥**

(श्रीराधासुधानिधि – २२३)

हे गोपेन्द्र कुमार ! एक गिरिराजजी को उठाने में आपको इतना परिश्रम करना पड़ा और श्रीराधारानी के वक्षःस्थल पर तो दो सोने के गिरिराज हैं, जिनको देखने मात्र से ही आप भयभीत होते हैं, फिर उन्हें उठाने की सामर्थ्य आपमें कहाँ हो सकती है ? इसलिए वृथा गर्व मत करना कि मैं गिरिराज गोवर्धन को धारण करने वाला हूँ । हे वृषभानुनन्दिनी ! इस प्रकार का परिहास करके मैं आपके प्रियतम को कब लज्जित करूँगी ? इसी प्रकार हितचतुरासीजी में हरिवंश महाप्रभुजी वर्णन करते हैं –

आज गोपाल रास रस खेलत,
पुलिन कल्पतरु तीर री सजनी ।

अरे ! तुम कैसे गोपाल के उपासक हो ? तुम्हारे आचार्यों ने अपने रस ग्रन्थ में गोपाल नाम से श्यामसुन्दर की लीला गाई है। चतुरासीजी को देख लो, उसमें कई बार गोपाल शब्द प्रयुक्त किया गया है और आज तुम लोग इतने ऊँचे रसिक बन गये हो कि गोविन्द और गोपाल नाम के लिए कहते हो कि इन नामों के प्रयोग से हमारा रस नष्ट हो जाता है। पता नहीं, कैसा तुम्हारा रस है, हमारी समझ में तो यह आता नहीं है। ऐसे शब्द कहने वालों की बातें सुनकर ये पता चलता है कि इन्हें कभी रस मिला ही नहीं और जब तक ऐसी संकीर्णतायें बनी रहेंगी, तब तक इन्हें रस कभी भी नहीं मिलेगा। "आज गोपाल रास रस खेलत, पुलिन कल्पतरु तीर री सजनी ।" यमुनाजी के तट पर कल्पवृक्ष के नीचे गोपालजी रास क्रीड़ा कर रहे हैं। ऐसा हित चतुरासीजी में हित हरिवंश महाप्रभुजी ने स्पष्ट कहा है, फिर भी अपने को हरिवंशी-हरिदासी कहने वाले आजकल

के संकीर्ण लोग कहते हैं कि 'गोपाल' नाम मत लो। वस्तुतः इन लोगों की बुद्धि में अतिशय भ्रम छाया हुआ है। इन लोगों ने समझ रखा है कि 'गो' का अर्थ केवल गाय ही होता है किन्तु गोपाल का मतलब यही नहीं है कि हियो–हियो कहकर जो जंगल में गाय चराता है, वही गोपाल है। 'गो' शब्द का वास्तविक अर्थ है – इन्द्रियाँ, इसलिए यहाँ 'गोपाल' शब्द का यथार्थ अर्थ है – श्रीजी और उनकी सहचरी गोपिकाओं की दिव्य इन्द्रियों का पालन करने वाला 'गोपाल' और उनकी इन्द्रियों की रक्षा करने वाला 'गोविन्द'। तुम लोग अभी तक 'गोपाल एवं गोविन्द' नाम का अर्थ ही नहीं समझ पाए हो, केवल संकीर्णता में फँसे हुए हो और संसार को भी उसमें फँसा रहे हो। मीराजी कहती हैं –

चाकर रहसूँ बाग़ लगासूँ, नित उठ दरसन पासूँ।

आगे की पंक्ति में वृन्दावन नाम का प्रयोग आएगा किन्तु हम वृन्दावन शब्द को बदल देते हैं क्योंकि वृन्दावन का अर्थ है वृन्दा अर्थात् तुलसीजी का वन परन्तु वर्तमान काल में वृन्दावन एक आधुनिक शहर बनता जा रहा है, वहाँ सड़कों का निर्माण हो गया है और उन पर दिन–रात मोटर–गाड़ियों का आवागमन होता रहता है। इसलिए अब तो वास्तविक वृन्दावन 'गह्वरवन' ही है, अतएव इस पंक्ति को इस तरह गाना पड़ेगा –

गह्वरवन की कुञ्ज गलिन में, तेरी लीला गासूँ।
श्याम म्हाने चाकर राखो जी।

मीराजी के अनुसार इस चाकरी में तीन वस्तुओं की उपलब्धि होती है, निश्चित होती है। सम्प्रदाय पर विशेष जोर देने वाले वर्तमान काल के रसिक लोग चेला बनाते हैं, तिलक लगाते हैं और समझते हैं कि हम तो स्वामी बन गये हैं, हमको रास की प्राप्ति हो गयी है, यह झूठ बात है। रास किसको मिलता है, इसका उत्तर मीराजी ने ही दिया है – 'चाकरी में दर्शन पाऊँ' बिना सेवा किये, दर्शन न किसी को मिला, न मिलेगा; चाकरी करने पर खर्च या वेतन क्या मिलेगा ? क्या पैसा मिलेगा, नहीं 'सुमिरन पाऊँ खरची' जागीरी मिलेगी, बहुत बड़े राजा बन जाओगे। 'भाव भगति जागीरी पाऊँ' मीरा का नाम न कोई मिटा सकता है, न मिटा सका और न मिटा सकेगा। साम्प्रदायिक रूप से संकीर्ण लोग मीराजी को रसिक नहीं मानते हैं, मत मानो। 'मीरा' तो सूर्य हैं, तुम्हारे जैसे जुगनुओं द्वारा की जाने वाली आलोचना से मीरा जैसी सूर्य के प्रकाश में कोई कमी नहीं आ सकती है, उनकी तेजोमयी भक्ति का प्रकाश अनन्तकाल तक संसार को प्रकाशित करता रहेगा। मीरा कहती हैं – 'भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बाताँ सरसी।' तीन बातें – चाकरी (सेवा), सुमिरन (अखण्ड कृष्ण स्मरण) एवं अखण्ड भाव भक्ति; एक साथ प्राप्त होंगी। श्रीराधाकृष्ण कहाँ रहते हैं ? 'मोर मुकुट पीताम्बर सोहै' पीताम्बर माने राधारानी। 'श्यामसुन्दर' पीताम्बर क्यों पहनते हैं ? पीताम्बर के रूप में वे 'राधारानी' को ही धारण करते हैं। इसी प्रकार 'श्रीराधारानी' भी जो नीली साड़ी पहनती हैं तो उसके रूप में श्यामसुन्दर को ही धारण करती हैं। दोनों सदा संग–संग ही रहते हैं, कभी अलग नहीं हो सकते हैं। "मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल वैजयन्ती माला। वृन्दावन में धेनु चरावै..." अब शहर रूपी वृन्दावन में गोपालजी गायें कैसे चरायेंगे, क्योंकि वहाँ दिन–रात सड़कों पर मोटर–गाड़ियाँ दौड़ती रहती हैं। यदि गोपालजी गायें चरायेंगे तो कोई गाड़ी उनकी गायों के बीच में आ जाएगी और कर्कश ध्वनि उत्पन्न करेगी, ऐसी स्थिति में वृन्दावन में गायें चराना कठिन हो जायेगा किन्तु बरसाने के गह्वर वन में ऐसा नहीं है, इसलिए यही कहना उचित है – 'गह्वरवन में धेनु चरावै' 'गोविन्द–गोपाल' का अभिप्राय केवल गाय चराना ही नहीं है। 'गो' माने इन्द्रियाँ। 'भगवान्' भक्तों की, गोपियों की इन्द्रियों का पोषण करते हैं, उनकी इन्द्रियों की रक्षा करते हैं। उनकी आँखों को भगवान् दर्शन देते हैं, इस तरह यह भक्तों की, गोपियों की आँखों का पोषण हो

गया। कानों से हम लोग युगल सरकार की चर्चा सुनते हैं तो कान तृप्त हो जाते हैं, नाक से युगल को अर्पित दिव्य गन्ध को सूँघते हैं, जीभ से उनको अर्पित प्रसाद को ग्रहण करते हैं। 'गह्वरवन में धेनु चरावैं' वास्तव में अब यही गह्वर वन है, जहाँ भगवान् भक्तों की इन्द्रियों का पोषण करते हैं, कर सकते हैं। धेनु अथवा गो का मतलब केवल गायें ही नहीं है। गो का अर्थ भक्तों, गोपिकाओं एवं श्रीजी की इन्द्रियाँ, अनन्त गोपियों की इन्द्रियों का पोषण भगवान् श्यामसुन्दर करते हैं। 'मोहन मुरली वाला... श्याम म्हाने चाकर राखो जी।' श्रीभट्टदेवाचार्य जी का पद है – **"मदन गोपाल शरण तेरी आयो। चरण कमल की सेवा दीजै, चेरो करि राखो घर जायो॥"** हे मदन गोपाल ! मैं आपकी शरण में आया हूँ। मुझे अपने चरण–कमलों की सेवा दे दीजिये। मुझे अपना 'घर जाया चाकर' बना लीजिये। 'घर जाया चाकर' अर्थात् अपने घर का चाकर निश्चित रूप से कभी निकाला नहीं जाता और जो उसे निकालता है, वह नालायक है। जिस 'चाकर' अर्थात् सेवक को माता–पिता ने घर में रखा है, उसे किसी भी स्थिति में निकाला नहीं जाता है, चाहे प्राण ही क्यों न चले जाएँ। मीराजी आगे कहती हैं – **'हरे–हरे नित बाग़ लगाऊँ'** मैं ब्रज–वृन्दावन धाम में बाग़ लगाकर उसमें नित्य ही सुन्दर–सुन्दर वृक्ष लगाऊँगी किन्तु जब उस बाग़ में राधारानी और श्यामसुन्दर पधारेंगे तो उनके चलने के लिए रास्ता भी चाहिए, इसलिए **'बिच–बिच राखूँ क्यारी, साँवरिया (युगल रूप) के दरसन पाऊँ, पहर कसूँभी सारी।'**

मैं हरे–हरे वृक्षों के बीच में क्यारी लगाऊँगी और जब मेरे द्वारा लगाये गये बाग़–बगीचे का अवलोकन करने के लिए युगल सरकार श्रीराधा–माधव पधारेंगे तो मैं कसूँभी साड़ी पहनकर उनका दर्शन करूँगी। (हलके गुलाबी रंग को कसूँभी कहते हैं।) मीराजी को गहरा रंग पसंद नहीं था, इसलिए वे कसूँभी रंग का वस्त्र पहना करती थीं। इस रूप का दर्शन करने के लिए **'जोगी आया जोग करन को, तप करने सन्यासी।'** जप–तप सबका सार है भगवान् की भक्ति अर्थात् सेवा। मीरा साम्प्रदायिक नहीं थीं। वह दास तो थीं किन्तु साम्प्रदायिक रूप से संकीर्ण नहीं थीं कि योग और तप का खण्डन करें। **'हरि भजन को साधु आये'** 'साधु' का अर्थ है सबसे सुन्दर साधन करने वाला। 'साध्' धातु से 'साधु' शब्द बना है। सबसे सुन्दर साधन करने वाले को 'साधु' कहते हैं। सबसे सुन्दर साधन क्या है ? वह है – सेवा। जब कोई महन्त बन जाता है, तब वह सेवा नहीं कर सकता, इसका अभिप्राय है कि वह साधु नहीं है। **'हरि भजन को साधु आये, वृन्दावन के वासी।'** सबसे सुन्दर साधन करने वाले अर्थात् सेवा करने वाले साधु केवल ब्रज में रहते हैं और ब्रज के भाव को जानते हैं; हिमालय के साधु ऐसे नहीं होते हैं। **'वृन्दावन के वासी, गह्वरवन के वासी। श्याम म्हाने चाकर राखो जी।'** चाकर बनने पर ही गम्भीर भाव का दर्शन मिलेगा। बिना सेवा के यह भाव तुमको नहीं मिलेगा। **मीरा के प्रभु गहर गम्भीरा, सदा रहो जी धीरा।**

युगल की सेवा का भाव बड़ा ही गम्भीर है। इस गम्भीर भाव को पाने के लिए धैर्य धारण करो। ये भाव ऐसे ही नहीं मिलेगा और यह दर्शन दिन में नहीं मिलेगा। **आधी रात प्रभु दर्शन दीन्हा, प्रेम नदी के तीरा।**

निकुंजों में आधी रात में श्रीराधामाधव का दर्शन व नित्य विहार की प्राप्ति तभी होगी, जब तुम्हारे हृदय में सच्चा प्रेम होगा। (नित्य विहार की लीला का दर्शन तिलक–छाप से नहीं मिलेगा।)

ब्रज में तो परमेश्वर भी गाली खाता है। इसी का नाम ब्रज उपासना है।

श्रीधाम का सच्चा स्वरूप

वृन्दावन केवल पाँच कोस का ही है, इसे व्यर्थ बकवाद के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है जबकि सभी रसिकाचार्यों ने व्यापक वृन्दावन को पञ्च योजनात्मक ही उद्घोषित किया है । क्या धाम को संकुचित करना ही श्रीवृन्दावन रसोपासना निष्ठा पद्धति है? रसोपासना की मूल भित्ति का भेदन कर कोई रसिक कहाँ से बन पायेगा? संकीर्ण लोगों की भ्रांत मति मात्र अन्यान्य सम्प्रदायाचार्यों के विषय में ही उपद्रव मचा रही है ऐसा नहीं है प्रत्युत अपने सम्प्रदाय के भी स्वरूप को वे लोग अत्यन्त आश्चर्यजनक व अशास्त्रीय रूप में उपस्थित कर रहे हैं, ऐसे लोगों को अनन्य नहीं माना जा सकता, वे केवल व्यक्तिगत प्रतिष्ठा सम्बन्धी निकृष्ट धारणाओं पर ही आधारित दिखाई पड़ते हैं । आज आवश्यकता है शुद्ध चर्चा, वास्तविकता परिवेषण तथा साम्प्रदायिक संकीर्णता रहित वैष्णव धर्मों का प्रचार–प्रसार । इनके अनुपालन से ही वैष्णवाचार्यों की प्रतिष्ठा, आत्मकल्याण, समाज एवं राष्ट्र का कल्याण शक्य है अन्यथा कदापि नहीं ।

वृन्दावन का वास्तविक स्वरूप –

पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम् ।
कालिन्दीयं सुषुम्णाख्या परमामृतवाहिनी ॥

(बृहद् गौतामीय तन्त्र)

भगवद्–वाक्य है यह ! श्रीभगवान् कह रहे हैं – यह पञ्चयोजनात्मक वन मेरा देह है, जिसमें कालिन्दी का स्थान सुषुम्णा नाड़ीवत् अत्यन्त महत्वपूर्ण है । आज संकीर्ण विचार धाराओं ने धाम को संकुचित कर दिया, शास्त्रीय वचन व भगवद्वाक्यों का ही खण्डन कर दिया । जो श्री वृन्दावन पञ्चयोजनात्मक है, उसे संकुचित करते करते केवल शहर रूप में स्वीकार कर लिया जबकि पञ्चयोजन अर्थात् २० कोस (६० कि.मी) है – श्रीमद्भागवत में भी कहा है –

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ।
नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरःसु च ॥

(श्रीभागवतजी १०/१८/१६)

वृन्दावन एक वह वन है जिसके अन्तर्गत अनेकों वन हैं, पर्वत हैं, सर हैं, नदियाँ हैं । देखिये श्रीमज्जीवगोस्वामी कृत वैष्णव तोषिणी में – **"श्री वृन्दावने काननेषु तदन्तर्गतेषु काम्यकवनादिषु ... "** श्रीवृन्दावन में काम्यकवन (कामा) आदि अनेकों वन आते हैं – **श्री वृन्दावन भूमौ नन्दीश्वराष्टकूटवरसानुधवलगिरि सुगन्धिकादयो बहवोऽद्रयो वर्त्तन्ते ।**

(श्रीमज्जीवगोस्वामी कृत वैष्णव तोषिनी टीका.भा.१०/२४/२५)

श्री वृन्दावन भूमि में नन्दीश्वर पर्वत, अष्टकूट पर्वत (अष्टमहासखियों के पर्वत), सखिगिरि पर्वत ऊँचे गाँव में, सुवर्णगिरि पर्वत (सुनहरा गाँव) सुदेवी जी का, रंकु गिरि रांकोली इन्दुलेखा जी का, इन्द्रगिरि इन्द्रोली गाँव, धवलगिरी घाटा में, सौगन्धिक पर्वत जहाँ सौगन्ध खाई थी श्री कृष्ण ने एवं अन्य बहुत से पर्वत रोहिताचल, कनकाचल, गन्धमादन, विन्ध्याचल, त्रिकूट, मैनाक आदि ऐसे बहुत से गिरि आते हैं, तभी तो वृन्दावन का स्वरूप ६० कि.मी. में है । बहुत से अज्ञ जन गिरिराज जी को वृन्दावन में न मानकर बहुत बड़ी भूल करते हैं, ऐसी नवीन कल्पित मान्यताओं को त्यागकर उन्हें कुछ शास्त्र वचन पर भी ध्यान देना चाहिए – **"अहो वृन्दावनं रम्यं यत्र गोवर्द्धनो गिरि"**

(स्कन्दपुराण)

धन्य है यह रमणीय वृन्दावन, जहाँ श्रीगिरिराज गोवर्धन हैं, श्रीहरिवंशपुराण में भी यही भगवद्–वाक्य है । **श्रूयते हि वनं रम्यं पर्याप्ततृणसंस्तरम् । नाम्ना वृन्दावनं नाम स्वादुवृक्षफलोदकम् ॥ तत्र गोवर्द्धनो नाम नातिदूरे गिरिर्महान् । भ्राजते दीर्घशिखरो नन्दन्स्येव मन्दरः ॥ तत्र गोवर्द्धनं चैव भण्डीरं च वनस्पतिम् । कालिन्दीं च नदीं रम्यां द्रक्ष्यावश्चरतः सुखम् ॥**

(हरिवंशपुराण, विष्णुपर्व – ८/२२,२५,२८)

भागवतजी में ठाकुरजी के वत्सपाल से गोपाल बनकर वृन्दावन में प्रवेश का वर्णन मिलता है –

"वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः"

गोपाल लाल ने वृन्दावन में प्रवेश किया, कैसा था? वह उपासनामय था। यहाँ का कण–कण राम–श्याम की उपासना करता है गोपाल जी बोले – "दाऊ दादा ! देखो तो यहाँ की लताएँ, हिरनियाँ, वृक्ष सब कितने स्वागतोत्सुक हैं।

धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्
पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ।
नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकै
र्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥

(श्रीभागवतजी १०/१५/८)

आपकी दृष्टि मात्र से वृन्दावन की नदी, अद्रि माने पर्वत, पशु, पक्षी सब कृतार्थ हो रहे हैं। शुकदेव जी ने तो संकीर्ण विचारों के लिए कोई स्थान ही नहीं छोड़ा। नदी, वन, गिरि, सर का वर्णन करने के उपरान्त यह भी कह दिया कि उक्त वर्णन किसी इतर स्थान का नहीं प्रत्युत वृन्दावन का व वृन्दावनान्तर्गत श्रीगिरिराजजी का ही है।

एवं वृन्दावनं श्रीमत्कृष्णः प्रीतमनाः पशून् ।
रेमे सञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥

(श्रीभागवतजी १०/१५/९)

इस प्रकार परम रमणीक वृन्दावन को देखकर श्यामसुन्दर अतिशय आनन्दित हुए। सखा समूह सहित श्रीगिरिराजजी की तलहटी में गौचारण करते हुए नाना क्रीड़ाएँ करने लगे। वृन्दावन–वर्णन में यदि 'सरिता' शब्द आये तो मन स्वयमेव सिद्ध कर लेता है कि वे 'श्रीयमुनाजी' हैं। इसी प्रकार 'गिरि, द्रोणि अथवा सानुषु' शब्द 'श्रीगिरिराजजी' का उद्घोष करता है। स्पष्टतया वृन्दावन में गिरिराजजी का नाम लिया। पुनादपि संकीर्ण लोगों ने आचार्य–वाणी को काटकर वृन्दावन को केवल शहर रूप में स्वीकार कर लिया, उनकी दृष्टि में श्रीगिरिराजजी, श्रीबरसाना, श्रीनन्दगाँव, श्रीकाम्यकवन ....आदि वृन्दावन में नहीं हैं तो क्या श्री मज्जीव गोस्वामी जी की वाणी असत्य है ? अथवा

यह कहा जाए कि भगवान् की सृष्टि में कुछ ऐसे भी प्राणी हैं जिन्हें दोपहर के प्रचण्ड सूर्य के अतिशय ज्वलन्त आलोक में भी अँधेरा ही अँधेरा दिखाई पड़ता है, आप सब जानते हैं कि वह कौन–सा प्राणी होता है, बताने की आवश्यकता नहीं। शुकदेवजी ने स्थान–स्थान पर सावधान किया है हठवादियों को कि श्रीवृन्दावन में गिरि (गिरिराज जी), (नन्दीश्वर), (ब्रह्माचल घाटी) हैं। श्रीवृन्दावन में नदी (श्रीयमुना) हैं, श्रीवृन्दावन में वन (काम्यक वन) आदि हैं, श्रीवृन्दावन में कुञ्जें हैं (श्रीगहवर वनादि) –

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ।
नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च ॥

(श्रीभागवतजी १०/१८/१६)

इस प्रकार राम–कृष्ण श्रीवृन्दावन की नदी, पर्वत, घाटी, कुञ्ज, वन व जलाशयों में सामान्य बालकों की सभी क्रीड़ा करते हुए विचरण करने लगे।

श्रीमद्भागवत के युगलगीत में भी वर्णन है –

सहबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो
व्रजदेव्यः । हर्षयन्यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष
उपरम्भति विश्वम् ॥ (श्रीभागवतजी १०/३५/१२)

"हे ब्रजदेवियो ! कन्हैया कुसुमित कुण्डल धारण कर दाऊ जी के साथ (सानुषु का अर्थ यहाँ आचार्यों ने अनेकों पर्वतों से लिया है) गिरिराज जी की शिखरों पर चढ़कर बाँसुरी बजाता है।" यदि रसिक बनकर संकीर्ण बनते हो तो देखो पूर्व रसिकाचार्यों के ग्रन्थ व मत – "श्रीराधासुधानिधिकार" क्या कहते हैं –

अहो तेमी कुंजास्तदनुपमरासस्थलमिदं
गिरिद्रोणी सैव स्फूरति रतिरंगे प्रणयिनी ।
न वीक्षे श्रीराधां हरहर कुतोपीति शतधा
विदीर्येन्त प्राणेश्वरि मम कदा हंत हृदयम् ॥

(श्रीराधासुधानिधि – २०९)

इहैवाभूत्कुंजे नवरतिकलामोहनतनो
रहो अत्रैवानृत्यदयितसहिता सा रसनिधिः ।
इति स्मारंस्मारं तव चरितपीयूषलहरीं
कदा स्यां श्रीराधे चकित इह वृन्दावनभुवि ॥

(श्रीराधासुधानिधि – २१०)

श्रीगोवर्द्धन एक एव भवता पाणौ प्रयत्नाद्धृतः
श्रीराधातनुहेमशैलयुगले दृष्टोऽपि ते

स्याद्व्रयम् ।
तद्वोपेन्द्रकुमार ! मा कुरु वृथा गर्व परीहासतः कर्ह्ये वं वृषभानुनन्दिनि ! तव प्रेयांसमा भाषये ॥ (श्रीराधासुधानिधि – २२३)

ये वे ही कुञ्जें हैं, वही दिव्य रास–मण्डल है, राधा–माधव के रति–रंग से प्रेम करने वाली वही श्रीगोवर्द्धन–पर्वत की कन्दरायें (गोवर्धन–वृन्दावन में ही) हैं, जिसमें श्रीयुगलसरकार ने रास–विलास किया। ब्रज–वृन्दावन का एक–एक पर्वत युगलसरकार की रति–रंग लीला से सिक्त है और उसे 'वृन्दावन' से पृथक् मानना महदपराध है। आचार्यों ने कहा कि वृन्दावन के इन पर्वतों पर बलरामजी के साथ सख्यरस की एवं श्रीजी के साथ श्रृंगार–रस की क्रीड़ाएँ सम्पन्न हुई हैं।

आचार्य श्रीमिश्र रामकृष्ण कृत प्रेम मञ्जरी टीका में देखें – **"श्रीवृन्दावन क्रीडा द्विविधा"**

वृन्दावन की लीला दो प्रकार की हैं – **"एका रहोविहारात्मिका द्वितीया गोपाललीलात्मिका"** श्रीजी के साथ रतिरंग लीला ही '**रहोविहारात्मिका**' (श्रृंगार–रस की लीला) है। श्रीदाऊ जी के साथ सख्य रस की लीला ही '**गोपाललीलात्मिका**' (सख्य रस की लीला) है। कृष्णयामल ग्रन्थ में भी उल्लिखित है – **एकेन वपुषा गोपप्रेमबद्धो रसाम्बुधिः । अन्येन वपुषा वृन्दावने क्रीडति राधया ॥ गोपवेषधरो गोपैर्गोपीभीरसविग्रहः । शृङ्गारोचितवेषाद्यःश्रीमान् गोपालनारतः ॥ एवं प्रकाशद्वैविध्ये स्थिते नित्यविहारिणाम् ॥** (कृष्ण यामल ग्रन्थ)

श्रीकृष्ण के साथ 'श्रीराधारानी' वृन्दावन के एक–एक वन, एक–एक गिरि, एक–एक कुञ्ज–निकुञ्ज, निभृत निकुञ्ज में अन्तरंग रास–विलास करके लौटती थीं।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन । (गीता–८/१६)

हे अर्जुन ! ब्रह्मलोक तक जाकर चौरासी लाख योनियों में लौटना पड़ेगा। जहाँ जाकर लौटना नहीं पड़ता, वह तो मेरा धाम है।

वेणुगीत के '**अक्षण्वतां फलमिदं**' (भा.१०/२१/७) तृतीय चरण **वक्त्रं व्रजेशसुतयोः** का आचार्यों ने कृष्ण–बलराम अर्थ नहीं किया है – **"व्रजेशो नन्दः व्रजेशो वृषभानु व्रजेशश्च व्रजेशावित्येकशेषः पुनः सुतश्च सुता च सुतौ पुनः षष्ठीतत्पुरुषः यथासंख्यतया व्रजेशसुतयोरति कृष्णराधयोर्वक्त्र"** (श्रीमज्जीव गोस्वामी कृत वृहत्क्रमसंदर्भ टीका)

ब्रजेश श्री नन्द बाबा भी हैं और श्री वृषभानु जी भी हैं तो व्रजेश नन्द जी का सुत (कृष्ण) एवं व्रजेश वृषभानु जी की सुता (श्रीराधा) **व्रजेश सुतयोः** – द्विवचन है तो एक तो श्याम सुन्दर और दूसरा अर्थ यहाँ जीव गोस्वामी जी ने श्रीराधारानी किया है । वक्त्रं एक वचन इसलिए कहा क्योंकि विशाखादिक सखियों को युगल में भी '**श्रीराधावक्त्रविशेषणम्**' केवल अपनी लाड़िली किशोरी ही दिखाई दे रही हैं तो ब्रज का प्रत्येक गिरि, वन, सर प्रतिदिन युगल सरकार की आंतरिक लीला का दर्शनानंद प्राप्त करता है। इस अन्तरंग लीला भूमि को छोड़कर वृन्दावन को केवल शहर रूप में ही संकुचित करना क्या नास्तिकता नहीं है? इस संकीर्णता से धाम के स्वरूप का ह्रास हुआ, समाज का ह्रास हुआ, धाम की उपासना का ह्रास हुआ। ऐसे संकीर्णवादी लोग धामोपासक नहीं निश्चित ही धाम नाशक हैं।

श्रीव्यासजी के मत में भी श्रीगोवर्धन गिरिराज, श्रीमथुरा जी, श्रीगोकुल सब वृन्दावन के अन्तर्गत ही हैं –

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥

(श्रीभागवतजी१०/११/३६)

एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्ध आत्मा प्रियोऽर्थो भगवाननन्तः ।
तं निर्वृतो नियतार्थो भजेतसंसारहेतूपरमश्च यत्र ॥
(श्रीभागवत२/२/६)

प्रभु कहीं बाहर से नहीं आयेंगे। हमारे चित्त में तो प्रभु स्वतः सिद्ध हैं, बैठे हुए हैं, चित्त के अधिष्ठाता ही वासुदेव हैं, साक्षात कृष्ण चित्त में विराज रहे हैं। श्रीकृष्ण स्वतः सिद्ध हैं, हमें केवल उनकी ओर देखना है, वे कहीं बाहर से नहीं आयेंगे–जायेंगे।

'बरसाना' वृन्दावन से अलग नहीं

आज सुदृढ़ भव में फँसी संकीर्ण बुद्धि ने रसिक महापुरुषों की वाणी पर ध्यान देना छोड़ दिया।

पूज्य श्रीबाबामहाराज प्रारम्भ में जब ब्रज में नए–नए आये थे तो उनके पूज्य गुरुदेव बाबा श्रीश्रीप्रियाशरणजीमहाराज ने कहा – "तीन प्रकार के भव होते हैं" – १. **भव** – गृह त्याग करके साधु बन गए तो भव से मुक्त हो गए। २. **दृढ़ भव** – देहाभिमान का छूटना, कामादि विकारों का छूटना दृढ़ भव से मुक्ति है। ३. **सुदृढ़ भव** – राग–द्वेष व साम्प्रदायिक संकीर्णता से मुक्त होना ही सुदृढ़ भव से निर्मुक्त होना है। मुक्त होना तो दूर रहा यह विवाद इतना बढ़ जाता है कि संकीर्ण–बुद्धि आचार्यों पर भी आक्षेप करने लग जाती है। आज अनन्यता की आड़ में मात्र आलोचना–प्रत्यालोचना, पारस्परिक साम्प्रदायिक द्वेष का ही नर्तन–दर्शन हो रहा है। इसलिए प्राचीन महापुरुषों ने खीझकर अपशब्द (गाली) का भी प्रयोग संकीर्ण बुद्धि के प्रति किया है –

जगत में पैसन ही की मांड़।
पैसन बिना गुरु को चेला खसमैं छाँड़ै राँड़ ॥

– – – – – – – – – – – – – – – –

धीरज धर्म विवेक सौचता दई पंडितन छाँड़ ॥
संत महंत गाम के आमिल करत प्रजा को दाँड़।
'भगवत रसिक' संग बिन सबकी कीन्हीं कलिजुग भाँड़ ॥ (श्रीभगवतरसिकजी)

प्राचीन संतों का ऐसा कथन है कि ब्रज में ब्रजवासी, ब्रज हाँसी, ब्रजनाशी, एवं ब्रज फाँसी ये चार प्रकार के ब्रजौकस पहले भी थे और अब भी हैं। द्वापर में ब्रज हाँसी, ब्रजनाशी, ब्रज फाँसी तो कंस, पूतना, अघ, बक, वत्स, प्रलम्ब, धेनुकादिक असुर थे और वर्तमान में जो इनके अनुगामी हैं वे ब्रजनाशी, ब्रज हाँसी व ब्रज फाँसी हैं। सच्चे ब्रजवासी तो कुछ ही हैं। ऐसी स्थिति में धामोपासक धाम में रहकर अपनी साधना किस प्रकार से चलावे जबकि वर्तमानकाल में ही नहीं प्रह्लादजी के समय में भी धर्म अपने सभी अंगों के साथ व्यापार बन गया था –

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणांवार्ता
भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ॥

(श्रीभागवतजी ७/९/४६)

वर्तमान में भी सर्वत्र अर्थ (धन, रुपया–पैसा, स्वार्थसिद्धि) की ही प्रधानता दृष्टिगोचर होती है, इसलिए धन का धर्म पर कुप्रभाव (गलत असर) पड़ रहा है। भागवत का प्रथम सिद्धांत है –

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥

(श्रीभागवतजी १/२/९)

धर्म का लक्ष्य धन नहीं है, धन को ही लक्ष्य करके चलने वाला न वक्ता है, न श्रोता है। भागवत कथन व श्रवण की शर्त है –

कृष्णार्थीति धनार्थीति श्रोता वक्ता द्विधा मतः ।
यथा वक्ता तथा श्रोता तत्र सौख्यं विवर्धते ॥

(स्कन्दपुराणोक्त भागवतमाहात्म्य – ४/३९)

वक्ता भी 'कृष्णार्थी' हो और श्रोता भी 'कृष्णार्थी' हो तब 'भागवत–रस' प्रवाहित होगा। आज 'रस' के स्थान पर साम्प्रदायिक–संकीर्णता विशेषतः अशेष–विशेष 'श्रीरसनिधि' में विष का सम्मिश्रण कर रही है। इस विषम गति से प्रतिस्पर्धा, द्वंद्व व अपने को श्रेष्ठ रसिक सिद्ध करने की सभी कुरीतियों को अपनाया जा रहा है और स्थिति यह हो गई है; श्रीहरिरामव्यासजी का पद है –

कहत सुनत बहुतै दिन बीते भगति न मन में आई ।
श्याम कृपा बिनु साधु संग बिनु कहि कौने रति पाई ॥
अपने–अपने मत मद भूले करत आपनी भाई ।
कह्यौ हमारौ बहुत करत हैं बहुतन मे प्रभुताई ॥
मैं समझी सब काहू न समझी मैं सब हित समझाई ।
भोरे भगत हते सब तबके हमरे बहु चतुराई ॥
हमही अति परिपक्व भये औरनि के सबै कचाई ।
कहनि सुहेली रहनि दुहेलि बातनि बहुत बड़ाई ॥
हरि मन्दिर माला धरि गुरु करि जीवन के सुखदाई ।
दया दीनता दास भाव बिनु मिलैं न 'व्यास' कन्हाई ॥

यही दुर्दशा सर्वत्र देखने को मिल रही है; श्रीसूरदासजी ने भी यही कहा – **"किते दिन हरि–सुमिरन बिन खोए । तिलक लगाय चले स्वामी है विषयिनि के मुख जोए ॥"** गोस्वामी श्रीतुलसी दास जी महाराज ने भी कहा – **"तुलसी देख सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर ।**(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – १६१)

स्वामी श्रीहरिदासजी ने सावधान करते हुए कहा –

लोग तौं भूलैं भलें भूलैं तुम जिनि भूलौ मालाधारी ।
अपनों पति छाँड़ि औरनि सों रति ज्यौं दारनि में दारी ॥
स्याम कहत ते जीव मोते बिमुख भये सोऊ कौन जिन दूसरी करि डारी ।
कहि (श्री) 'हरिदास' जग्य देवता पितरनि कों स्रद्धा भारी ॥

श्रीकबीरदासजीमहाराज ने तो अपने प्रत्येक पद में "**कहत कबीर सुनो भई साधो**" साधो ही सम्बोधन रखा। कलिकाल के आधुनिक रसिकों में श्रेष्ठ रसिक बनने की होड़ मच गई है वृन्दावन में, इसीलिए व्यासजी ने लिखा – **"भोरे रसिक हुते पहले के, हमरे अधिक चतुराई ।"** पूर्व रसिकाचार्यों को तो भोरा बताते हैं और स्वयं को चतुर और इसकी सिद्धि में ब्रजलीला, निकुञ्ज लीला में जो जितनी बड़ी दीवार खींचता है, वह उतना ही बड़ा रसिक माना जाता है। बड़ा विस्मय है कि रसिकों की वाणी में ही आक्षेप करने लग गए।

मत्कंठे किं नखरशिखया दैत्यराजोस्मि नाहं
मैवं पीडां कुरू कुचतटे पूतना नाहमस्मि ।
इत्थं कीरैरनुकृतवचः प्रेयसा संगतायाः
प्रातः श्रोष्ये तव सखि कदा केलिकुंजे मृजंती ॥

(राधासुधानिधि – १६३)

यहाँ ग्रन्थकार ने पूतना लीला, तृणावर्त लीला को माना है और श्रीजी कह भी रही हैं तथापि लोगों की हठवादिता बनी हुई है। स्वामी श्रीहरिदास जी ने स्पष्ट साँकरी खोर, गहवर वन, बरसाना की लीला गाई है –

हमारो दान मारयो इन अथवा **प्यारी जू आगे चल गह्वरवन भीतर जहाँ बोले कोइल री**

श्री हिताचार्य जी ने भी गाया – **"चलो वृषभानु गोप के द्वार"** **"ये दोउ खोर खिरक गिरि गहवर विहरत कुँवरि कंठ भुज मेलि"**

हम श्रेष्ठ रसिक हैं इसके लिए इन आचार्यों के कथन का कोई महत्त्व नहीं रहा।

श्रीगोवर्द्धन एक एव भवता पाणौ प्रयत्नाद्धृतः
राधावर्ष्मणि हेमशैलयुगले दृष्टेऽपि ते स्याद्भयम् ।
तद्गोपेन्द्रकुमार मा कुरू वृथा गर्वं परीहासतः
कर्ह्येवं वृषभानुनन्दिनि तव प्रेयांसमाभाषये ॥

(राधासुधानिधि – २२३)

हिताचार्य जी ने गिरिराज लीला गाई, स्फुट वाणी में भी प्राप्त होता है – **"लाल की छवि देख सखी .... "**

संकीर्ण लोगों ने धाम भगवान् का कर–पद काट दिया, धाम भगवान् का स्वरूप ही बिगाड़ दिया। धाम भगवान् के एक–एक अंग संस्थान का वर्णन है 'ब्रज भक्ति विलास' में, उसे न मानना छिन्न–भिन्न करना ही है। आज इसी उपेक्षा से ब्रज के कितने ही पर्वत नष्ट हो गए । 'बरसाना' वृन्दावन से अलग नहीं है ।

बरसाना अलग है, वृन्दावन अलग है, यह 'निकुंज लीला' वालों का है, यह 'भवन द्वार लीला' वालों का है। "**निगम कल्पतरोर्गलितं**" रसमय फल श्रीमद्भागवत में वर्णित भागवत धर्मों के विपरीत जिनकी सोच है, उनके पक्ष में विभिन्न निष्ठान्तर्गत वैचित्रीमय रस का स्वरूप या रसोपासना तो अति दूर की वस्तु है, 'रस' का शाब्दिक ज्ञान भी उन्हें नहीं है, वे तो कूप मंडूकवत अपनी निराधार धारणाओं में सिमिट कर उपासना के किसी एक अंश रूपी चावल के टुकड़े को लेकर अपने को पंसारी भी मान सकते हैं, वस्तुतः जिनका रस में लेश भी प्रवेश नहीं है, उनकी मति में संकीर्ण विचारों का उपद्रव मचना नैसर्गिक ही है। सभी ब्रज प्रेमियों से विनय है कि सावधान रहें ऐसे वधिकों से जो धाम भगवान् को ही खण्डित करने में लगे हुए हैं, इनके पास न उपासना का कोई आधार है, न इनका शास्त्र सम्मत कोई सिद्धांत है, न शास्त्र वचनों का अनुपालन है, एक कार्य अवश्य करते हैं जो इनकी जीविका है – अनन्यता की ओट में हर प्रकार का दाँव–पेच लड़ाकर धाम स्वरूप का खण्डन

करना, अपने जैसे लोगों की भीड़ बढ़ाना, सीधी– सादी जनता को भ्रांत करना बस यही इनका कार्य विशेष है। क्या कारण है जो सनातन धर्म सबसे प्राचीन होने के साथ–साथ विश्वपूज्य था, आज उंगली पर गिनती के सनातन धर्मावलम्बी रह गये।

कारण : उपदेष्टा ही विषमता का विष पिलाने लग गये।

यह संकीर्ण उपदेश आज जन साधारण को दुरत्यय अंधकार में ले जा रहा है। संकीर्ण उपदेशकों से सावधान !

स्वार्थ से संकीर्णता ही सिद्ध हो सकती है, भक्ति तो नहीं। ऐसे गुरु जो तुम्हें संकीर्ण विचारों का विष पिला रहे हैं उनका वरण करने से तो अच्छा है, गुरु मत बनाओ। जब तक सच्चे सद्गुरु न मिलें तब तक भगवान् को ही गुरु रूप में स्वीकार करो अन्यथा जहर पिलाने वाले तो बहुत मिल जाएंगे। जीव के एकमात्र हितैषी भगवान् ही हैं।

सर्वत्र अपने इष्ट को देखना ही अनन्यता है। यदा–कदा अपवाद भी दिखाई पड़ता है परन्तु यह उनके भाव की विशेष स्थिति है, क्योंकि वे अन्यत्र अभाव नहीं रखते। कुछ लोग कहते हैं कि केवल गुरुमन्त्र जपना ही अनन्यता है, कुछ कहते हैं अपने सम्प्रदाय की वाणी का पाठ ही अनन्यता है, कुछ कहते हैं निकुञ्ज –लीला का गान ही अनन्यता है। ये सभी बातें सत्य हैं। अब जैसे रसिकाचार्य श्रीसेवकजी की वाणी में प्राप्त होता है – **“वंश बिना हरि नाम न लैहौं।”** हम वंश के बिना हरिनाम भी नहीं लेंगे, “हरिवंश” ही कहेंगे। इसी प्रकार “दास बिना हरिनाम न लैहौं” किन्तु श्री सेवकजी जैसी अनन्य स्थिति सबकी तो नहीं है। सामान्य भाव होने से आचार्यवाणी में संकीर्णता लाकर हमलोग तो अपराधग्रस्त ही होंगे। सामान्य व्यक्ति इन पंक्तियों को

पकड़ेगा, जबकि ये सब बातें उत्तम निष्ठा के कारण कही गई हैं कि भावना में भेद न आये और अपनी निष्ठा चलती रहे और हम मन्दमति लोग निष्ठा की बातों को संकीर्ण बना देते हैं। साधुता के वास्तविक स्वरूप के लिए सुधानिधिकार व रसकुल्याकार ने इसका बड़ा उत्तम उत्तर दिया है – **ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्यदृश्याश्च ये। सर्वान् वस्तुतया निरीक्ष्य परमस्वाराध्यबुद्धिर्मम ॥** (राधासुधानिधि – २६४)

जो अत्यन्त क्रूर हैं, पापी हैं, असम्भाष्य हैं, असंदृश्य हैं (देखने व बात करने योग्य भी नहीं है) **ऐसे लोगों में भी परम स्वाराध्य बुद्धि रखकर ब्रज में उपासना करनी होगी**। ब्रज का कण–कण राधा–कृष्णमय, हमारा इष्ट है। रसकुल्याकार का कथन है कि ‘स्थापना बल’ की श्रद्धा रखनी पड़ेगी। धैर्य से ब्रजोपासना होगी, श्रीगीताजी में भी भगवान् ने यही कहा – धीर कौन है ? **यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ। समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥** (गीता २/१५) सभी स्थितियों में जो समान है वही धीर है, कालिदास जी का भी यही कथन है – **“विकार हेतौ सति विक्रियन्ते। येषां न चेतांसि तयेव धीरः”** विकार का हेतु सामने हो और फिर भी मन निर्मल रहे, किसी भी प्रकार का विकार न आये; वही सच्चा धीर है, मन का अनन्य चिन्तन ही अनन्यता है। हम लोग बाह्य क्रियाओं को अधिक महत्त्व देते हैं, चिन्तन पर ध्यान न देकर मात्र उपासना की पद्धति पकड़ लेते हैं, मन तो इधर–उधर दौड़ता ही रहता है। चिन्तन की अनन्यता के बिना उपासना सिद्ध नहीं होगी क्योंकि उपासना भी मन से होती है एवं चिन्तन भी मन से ही होने वाली क्रिया है। बस इसी धैर्य से श्रीधाम की आराधना करते हुए ‘श्रीराधामाधव’ को प्राप्त किया जा सकता है।

***‘ब्रज की मिट्टी’* को रजरानी कहते हैं। क्यों ? उसका कारण है – गंगाजी तो एक बार श्रीकृष्ण के चरणों के धोवन से प्रगट हुई थीं। यहाँ (ब्रज) की रज को तो श्रीकृष्ण रोज चाटते हैं, खाते हैं। मैया ‘कन्हैया’ से कहती है कि तू यहाँ की मिट्टी क्यों खाता है ?” तो वे बोले –**

ऐसो स्वाद नहीं माखन में, जो रस है ब्रज रज चाखन में ॥

'ब्रज व निकुञ्ज' की एकरूपता

जहाँ श्रीबिहारिनदेवजी "श्रीवृन्दावन रसखाँनि खँदानौ" गा रहे हैं, वहीं अगले पद में "ब्रज रज राज कियो रज राखी" गा रहे हैं; यह भेद है अथवा ऐक्य ?

श्रीबिहारिनदेवजी ने स्वयं ब्रज व निकुञ्ज का ऐक्य दर्शाया है। हम लोगों का रिसीवर दूषित होने से रसिकाचार्यों की मूल वाणी व भाव समझ से बाहर हो जाता है। इन भावों को झगड़े की झोपड़ी बनाने वालों का रिसीवर दूषित है। ट्रांसमीटर व रिसीवर दोनों का सम्मिलित सहयोग आकाशवाणी (रेडियो) है। ट्रांसमीटर सही है और रिसीवर गलत है तो मूल का स्वरूप बिगड़ जायेगा। परम भगवदीय श्रीकुम्भनदासजी श्रीयुगलसरकार की निकुञ्ज लीला के रसिक थे। एक बार सुपुत्र श्रीचतुर्भुजदासजी गोकुल गये। लौटने पर श्रीकुम्भनदास जी ने पूछा – आज कहाँ गये थे ? इस पर चतुर्भुजदासजी ने बताया – आज गोकुल गये थे, बाललीला का प्रकरण था। किन्तु प्रमाणलीला में क्यों गये ? यहाँ प्रमेय लीला में ही रहते। 'प्रमाण' अर्थात् साधन एवं 'प्रमेय' अर्थात् साध्य। 'श्रृंगार रस' साध्य है एवं 'सख्य, वात्सल्यादि' साधन हैं। प्रमाण–प्रकीर्ण में न जाकर, प्रमेय–प्रकीर्ण में रहो व अनन्य रसिक बनो; कुम्भनदासजी के इस प्रकार कहने पर श्रीचतुर्भुजदासजी ने गुसांई श्रीविट्ठलनाथजी से इसका आशय जानना चाहा तब श्रीगुसांईजी ने बहुत सुन्दर समाधान किया – चतुर्भुजदासजी ! कुम्भनदासजी का चित्त किशोरलीला (श्रृंगार रस की लीला) के आवेश में है, अतः उन्होंने ऐसा कहा है। वस्तुतः भगवल्लीला में कोई भेद नहीं है। भगवान् तो अनन्त विरोधी धर्मों के आश्रय हैं। एक ही समय में किशोर भी हैं और बालक भी। हमारे–तुम्हारे अन्दर यह सामर्थ्य नहीं है। कोई बालक है तो बालक ही रहेगा, उसी समय किशोर नहीं हो सकता है और किशोर है तो बालक नहीं हो सकता किन्तु प्रभु की यह अचिन्त्य शक्ति है कि वे एक ही समय में अनेक लीलाएँ सम्पादित करते हैं, यही तो उनकी सर्वशक्तिमत्ता है। वात्सल्य रस के उपासकों को बाललीला, सख्य रस के उपासकों को सख्यलीला व निकुञ्जोपासकों को निकुञ्ज लीला का दर्शन कराते हैं –

बाल रूप यशुमति मोहिं जाने, गोपिन मिल सुख भोगूं ।
(सूरसागर)

भगवान् की किसी भी लीला में सिद्धान्त से भेद नहीं करना चाहिए। भगवल्लीला में सैद्धान्तिक भेद अपराध है। महापुरुषों की आवेश–स्थिति से सर्वथा अनभिज्ञ होने से हम लोग अन्य लीलाओं में अभाव करके अपराध करते हैं। रसमत्तता के धोखे में अपराध हो जाता है।

श्री बिहारिन देव जी की वाणी –
भक्त साधारण के अपराधहिं काँपत डरनि हियो ।
(विहारिनिदेवजी की वाणी – ५८)

साधक भक्त के अपराध से भी डरना चाहिए फिर हमलोग भेदवादिता में पड़कर रसिक, आचार्य व गुरुजनों का अपराध कर बैठते हैं। रसिकजनों की वाणी का मनमाना अर्थोपयोग क्या अपराध नहीं है ?

श्रीबिहारिनदेवजी कह रहे हैं – **गुरु अपराध डरौ सब कोई । साधन श्रवन कहा फल लागै गयौ मूल गथ खोई ॥ काजर सों काजर न ऊजरौ होइ किन देखौ धोई । जोई रोग दोस सोई औषद रह्यौ आपकों रोई ॥ कृतघन उपकारहि नहिं मानत राखत तन मन गोई । कपट प्रीति परतीति न उपजै हला भला दिन दोई ॥ काचौ कटुक सुभाव बाकसौ (तजै) पाकौ नीबौ मीठौ होई । आदि मध्य अवसान बिमुखई रह्यौ विषै विष भोई ॥ जैसें जारैं अगिन कौ अगिनैं सीतल करैं न तोई । श्रीबिहारीदास और न उपाय अब श्री गुरु चरन सँजोई ॥**
(बिहारीदासजी सिद्धान्त के पद – ५९)

अर्थात् मूलाचार्यों ने जो कहा, उसे ही धारण करें, परवर्ती बातों को नहीं।

किन्तु

अधम न छाँड़ै अधमई गुरु कितौ पुकारै । पर की निन्दा करै पतित अपनो ब्रत हारै ॥
(विहारिनिदेवजी की वाणी – ३२)

हम लोग एक–दूसरे के सम्प्रदाय की निन्दा, आचार्य–निन्दा, वाणी–निन्दा जैसा जघन्य अपराध करते हैं और स्वयं को अनन्य रसिक समझते हैं।

बातें कहत बिहार की, गरे पर्‌यौ जंजाल।
महल टहल तैं जाँनिये, कहा बजायै गाल॥

(विहारिनिदेवजी की वाणी – ३७५)

इस रस की सीमा को छू पाना भी अत्यन्त दुष्कर है।

भगवत रसिक अनन्य, बधू नव गर्भ धरै उर।
सदा सहायक सासु–स्वामियाँ जानौ सतगुर॥

(भगवतरसिकजी की वाणी, निर्विरोध मनरंजन ग्रन्थ–१४)

'अनन्य रसिक' ही वह वधू हैं, जो अनन्य भक्ति रूपी गर्भ धारण करते हैं एवं 'सद्‌गुरु' उस सास व पति के समान हैं जो वधू के सर्वदा सहायक हैं।

जिस प्रकार पति के सिद्धान्तों के विरुद्ध चलने वाली स्वेच्छाचारिणी स्त्री का पातिव्रत कभी सिद्ध नहीं होता, उसी प्रकार 'सद्‌गुरु' के विरुद्ध चलने वाले शिष्य का अनन्य व्रत।

भरता के द्वै भामिनी बसैं, एक ही गाँव।
सेवा साधैं औसरनि, तोरैं पति के पाँव॥
तोरैं पति के पाँव, सौतियारौ सौ मानैं।
ऐसेहिं सब मत बाद, करैं खण्डन मत आनैं॥
आचरज अभिमान, आपकौं मानैं करता।
तजि विरोध नहीं भजैं, आपनौं भगवत भरता॥

(भगवतरसिकजी की वाणी, निर्विरोध मनरंजन ग्रन्थ–१५)

एक पति की दो पत्नियाँ पति के एक–एक चरण को अपना मानकर समय–समय से सेवा करते हुए एक चरण को दबायें व दूसरे चरण को सौत का मानकर तोड़ दें और यह भूल जाएं कि दोनों चरण उसी पति के हैं जिसकी वह पत्नी हैं तो यह पति की सेवा है अथवा प्रहार?

ऐसे ही आज सभी मत व सभी वाद अन्यान्य मत–वादों के खण्डन में लगे हैं जबकि समस्त सम्प्रदाय, सम्प्रदायाचार्य, सम्प्रदाय वाणी एक ही परमपति हरि की प्राप्ति का माध्यम हैं। क्या यह अपने इष्ट का विरोध नहीं है ? भूल गये कि सभी सम्प्रदायों का परम–चरम लक्ष्य तो भगवान् ही हैं फिर उसकी प्राप्ति के मार्गों में परस्पर विरोध कैसा ? तभी तो यह रसोपासना का मार्ग सबके सामर्थ्य की बात कहाँ ?

कठिन प्रीति रस रीति है समुझि गहो मन मांहि।
एक चकोर पावक चुगै सबहिन कौ भख नांहि॥
जो है जाति चकोर की सोई पावकै खाइ।
और पंछी जो छुवै चोंच सों छुबत जीभ जरि जाइ॥

(श्रीबिहारिनदेवजी की वाणी – ३९७, ३९८)

चातक ही अंगारा (आग का गोला) चुग सकता है, अन्य तो जीभ जला लेंगे। रसिकाचार्या श्रीब्रजगोपीजन ही हैं। गोपाङ्गनाओं से श्रेष्ठ रसिक कौन होगा, जिनके और श्यामसुन्दर के बीच उद्दाम रस का प्रवाह हुआ। उन गोपियों ने महारास–रस में भी सख्य, वात्सल्य लीला का अभिनय किया।

कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम्।
तोकयित्वा रुदत्यन्या पदाहञ्छकटायतीम्॥

(श्रीभागवतजी – १०/३०/१५)

एक गोपी पूतना बनी और दूसरी बालकृष्ण बन स्तनपान का अभिनय करने लगी, कोई वत्सासुर, कोई बकासुर, तो कोई कालियनाग बनी। गोपियों ने १०/३०/१५–२२ तक सभी लीलाओं का अनुकरण किया। श्रीमद्–राधासुधानिधि में पूतना लीला –

मत्कण्ठे किं नखरशिखया दैत्यराजोऽस्मि नाहं
मैवं पीडां कुरु कुचतटे पूतना नाहमस्मि।
इत्थं कीरैरनुकृतवचः प्रेयसा सङ्गतायाः
प्रातः श्रोष्ये तव सखि कदा केलिकुञ्जं मृजन्ती॥

(श्रीराधासुधानिधि – १६३) स्वयं गोपियों ने महारास में पूतना, तृणावर्त वधादि लीलाओं का अभिनय किया है। जो साक्षात् महारास में श्रीकृष्ण के साथ नृत्य कर रही हैं, क्या हम उनसे भी बड़े रसिक हैं, जो इन लीलाओं का खण्डन करते हैं ? यदि नहीं तो फिर भगवान् की सख्य, वात्सल्य की लीला का निषेध क्यों ? इन बातों से भगवल्लीलाओं में अभाव उत्पन्न होता है और यह अभाव भगवान् से सुदूर ले जाता है।

यन्न व्रजन्त्यघभिदो रचनानुवादा च्छृण्वन्ति येऽन्यविषयाः कुकथा मतिघ्नीः। यास्तु श्रुता

हतभगैर्नृभिरात्तसारा स्तांस्तान् क्षिपन्त्यशरणेषु तमःसु हन्त ॥ (श्रीभागवतजी – ३/१५/२३)

श्रीब्रह्माजी कह रहे हैं – तुम कितने ही ऊँचे शाब्दिक रसिक बन जाओ किन्तु भगवद्धाम की प्राप्ति कभी नहीं होगी। भगवान् की पापनाशिनी लीला–चर्चा छोड़कर व्यर्थ बातें कहते–सुनते हो, ये कुकथा बुद्धि नष्ट कर देगी। अभागे लोग ही भेद व अभाव युक्त व्यर्थ–चर्चा करते व सुनते हैं। श्रीब्रह्माजी ने कहा –

यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या दूरेयमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः । भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुरागवैक्लव्यबाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ॥ (श्रीभागवतजी – ३/१५/२५)

सख्य, वात्सल्य, शान्त, दास्यादि...किसी भी रस की लीला है, भगवान् की सभी लीलाओं को सुनकर जिनका शरीर रोमांचित हो उठता है, नेत्रों से अविराम प्रेमाश्रु प्रवाह होने लगता है, वे सौभाग्यशाली जन नित्यधाम की प्राप्ति कर लेते हैं।

एक बार पूज्य श्रीबाबामहाराज ने किन्ही महानुभाव से रस–चर्चा करते हुए श्रीरामचरितमानस की एक चौपाई कह दी। इस पर वह बोले – अरे ! हम तो तुम्हें अनन्य रसिक समझते थे किन्तु तुम तो अभी रामायण पर ही अटके हो। यह कैसी रसिकता जहाँ श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीरामचरितमानसादि वैष्णव ग्रन्थों का कथन–श्रवण भी पाप समझा जाता हो। आश्चर्य है कि इसे ही श्रेष्ठ कोटि की रसिकता समझा जाता है; उन्हें कुछ कहो तो कहते हैं हमारे पूर्वाचार्यों ने कहा है –

स्यामहि उपमा दीजै काकी । इहिं रस नवधा–भक्ति उवीठी रति भागोत कथा की । रहनकहन सबही तें न्यारी, 'व्यास' अनन्य सभा की ॥ (श्रीव्यासवाणी – १८०)

श्रीव्यासजी महाराज कह रहे हैं – हमें नवधा भक्ति अब अच्छी नहीं लगती, भागवत कथा में हमारी रति नहीं रही। केवल इन शब्दों को पकड़कर मनमाना करने वाला तो निश्चित ही कहेगा कि हमारे पूर्वाचार्यों ने नवधा भक्ति और भागवत कथा को छोड़कर निकुञ्ज रस में डूबने को कहा है और इस प्रकार वह बहिर्मुख ही हो जायेगा। विचार करें, उन्होंने ये बातें किस निष्ठा पर पहुँचने के बाद कही हैं।

जाकी (है) उपासना, ताही की वासना, ताही कौ नाम, रूप, गुन गाइयै ।
यहै अनन्य परम धर्म परिपाटी, वृन्दावन बसि अनत न जाइयै ॥
सोई विभिचारी आन कहै, आन करै, ताको मुख देखे, दारुन दुख पाइयै ।
'व्यास' होइ उपहास त्रास कियें, आस–अछत, कित दास कहाइयै ॥
(श्रीव्यासवाणी – १७९)

क्या विकर्मों से हमारी रुचि हट गयी है ? क्या विषयों से हमारी रुचि हट गयी है ? या फिर भक्ति और भागवत कथा से ही रुचि हटी है।

देखा देखी रसिक न ह्वैहैं, यह मारग है बंका ।
असहन निन्दा करत पराई, कबहूँ न मानी शंका ॥

कृष्णरस से इतर चर्चाओं से रुचि हटाओ।
रसिकों की वाणियों को भेदमूलक मत बनाओ।
यदि समझने का प्रयत्न करें तो 'श्रीमद्भागवत और रस वाणियों' में भेद है ही कहाँ ?

श्रीमद्भागवत एक अद्वितीय ग्रन्थ है, गम्भीर अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि जो युगल रस श्रीमद्भागवत में है वह अन्यत्र नहीं है। सम्पूर्ण रस ग्रन्थों का आकर ही श्रीमद् भागवत है, अन्तर इतना है की वही रस श्रीमद् भागवत में सूत्रात्मक है और आचार्यों की वाणियों में भाष्यात्मक है। श्रीमद्भागवत की रस–परम्परा ही सम्पूर्ण रस परम्परा का आधार है। सभी रसिकों ने यह स्वीकार किया है, आधुनिक भेदवादी अल्पज्ञों को छोड़कर।

मुक्ति कहै गोपाल सों, मेरी मुक्ति बताय ।
ब्रज–रज उड़ि मस्तक लगै, मुक्ति मुक्त ह्वै जाय ॥

'स्त्री' को 'कथा–वाचन' का अधिकार

लगभग २००० वर्षों की पराधीनता के बाद राजनैतिक रूप से '१५ अगस्त १९४७' को स्वतन्त्र हो जाने के बाद भी सांस्कृतिक रूप से अपनों की ही पराधीनता से मुक्त होने की तो कोई सम्भावना भी दिखाई नहीं दे रही है।

आज इस देश के संकीर्ण विचारकों के द्वारा जो देश व संस्कृति का संकुचन हुआ और अनवरत हो रहा है, वह तो विधर्मी आक्रान्ताओं के द्वारा लाखों वर्षों तक यहाँ लूट–पाट, तोड़–फोड़, कत्लेआम किये जाने पर भी नहीं हो सकता था। विशेषतः आज धर्म के नगाड़े बजाने वाले ही भगवद्वाणी, भगवद्रूपा आचार्यों की वाणी को सर्वथा भूल गये हैं। भूल गये कि भगवान् श्रीरामके वन–वनान्तर–भ्रमण का कारण केवट, शबरी एवं जटायु पर कृपा करना ही था। इस वन भ्रमण का उद्देश्य असुरों का वध नहीं था क्योंकि यह तो मात्र उनकी संकल्प शक्ति से भी हो सकता था। पुनः कलिकाल में श्रीरामानन्दाचार्यजी के रूप में महान विद्वानों की भूमि "काशी" में उद्घोष किया – **सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा शक्ता अशक्ता अपि नित्यरङ्गिणः। अपेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च नो न चापि कालो नहि शुद्धता च॥** (वैष्णवमताब्जभास्कर)

संसार में सबको भगवद्–शरणागति का अधिकार है, चाहे वह समर्थ हो अथवा असमर्थ। क्योंकि भगवान् की शरणागति में न श्रेष्ठ कुल की अपेक्षा है, न अत्यधिक बल की ही, न उत्तम काल की आवश्यकता है, न किसी शुद्धि की ही। प्राणीमात्र शुचि–अशुचि सभी अवस्था में सभी काल में श्रीभगवान् की शरणागति ग्रहण कर सकता है। श्रीसूरदासजी ने भी कहा – **हरि, हरि, हरि, सुमिरौ सब कोइ। नारि–पुरुष हरि गनत न दोइ॥** (सूरविनयपत्रिका – १४७)

सनातन धर्म के इस सूर्य स्वरूप सिद्धान्त पर ग्रहण लगाने वाले राहु–केतु स्वरूप आज के संकीर्ण विचारक सर्वथा त्याज्य हैं। भूल गये कि जगद्गुरू श्रीस्वामीरामानन्दजी ने रैदास (जो कि चमार थे) को भी शिष्य बनाया था जो कलिकाल की गोपी मीरा के गुरू हुए। कर्मकाण्ड प्रधान दक्षिण भारत की भूमि में प्रकट हुए शेषावतार श्रीरामानुजाचार्यजी कावेरी स्नान के लिए जाते समय एक विप्र के कंधे का सहारा लेते एवं लौटते समय धनुर्दास के कंधे पर हाथ रखकर आते, इससे अन्य ब्राह्मण शिष्यों को बड़ा रोष होता। स्नान को जाते हुए तो ब्राह्मण का स्पर्श और लौटते हुए शूद्र का स्पर्श ...! राम ! राम !! राम !!! ये तो आचरण भ्रष्ट हो गये हैं। बाद में श्रीरामानुजाचार्यजी ने उन द्वेषियों को श्रीधर्नुधरदासजी के भक्ति, त्याग एवं वैराग्यमय उदात्त व्यक्तित्व से अवगत कराया। खेद है कि आज अपने ही धर्मग्रन्थों की वाणी व भावना को यथार्थ रूप से न समझने वाले मनमुखी ज्ञानाभिमानी अज्ञानी लोग संकीर्णता का ध्वज हाथ में लिये अपने ही धर्म को खण्ड–खण्ड करने को खड़े हैं।

भारतीय आर्य संस्कृति में अनेकानेक स्त्रियाँ, जैसे – देवहूति, सुनीति, सती, मदालसा, सुबुद्धिनी, ब्रज की गोपी, रतिवन्ती, अरुन्धती, अनसूया, लोपामुद्रा, सावित्री, गार्गी, शाण्डिली, गणेशदेई, झालीरानी, शुभा, शोभा, कुन्ती, द्रोपदी, दमयन्ती, सुभद्रा, प्रभुता, उमा भटियानी, गोराबाई, कलाबाई, जीवाबाई, दमाबाई, केशीबाई, बाँदररानी, गोपालीबाई, मीराबाई, कात्यायनी, मुक्ताबाई, जनाबाई, सक्खूबाई, सहजोबाई, करमैतीबाई, रत्नावती, कुँअररानी, कान्हूपात्रा, चिन्तामणि, पिंगला, हम्मीर, सूर्य परमाल, सरदारबाई, लालबाई, वीरमती, विद्युल्लता, कृष्णा, चम्पा, पद्मा, संघामित्रा, अहिल्याबाई इत्यादि के रूप में 'आदर्श माता, आदर्श भगिनी, आदर्श पत्नी, आदर्श पुत्री, आदर्श रानी, आदर्श वीरांगना, आदर्श राजनीति निपुणा, आदर्श कार्यकुशला, आदर्श ब्रह्मवादिनी, आदर्श वक्त्री' की भूमिका निभाती रही हैं। आज यदि ये न होतीं तो भारतीय आर्य संस्कृति में आदर्श स्त्रियों का स्थान शून्य ही रह जाता।

आज कोई स्त्री धर्म प्रचारिका बन जाती है तो इसका खण्डन करने भारत के ही संकीर्ण धर्म प्रचारक खड़े हो जाते हैं। आर्यमेदिनी के युगप्रवर्तक धर्मप्रचारक तो थे 'स्वामी विवेकानन्दजी' नारी शक्ति के प्रति जिनके उदात्त विचार आज के प्रत्येक धर्म–प्रचारक को पढ़ने चाहिए। स्वामीविवेकानन्दजी का 'women of india' नामक ग्रन्थ एवं नारी शक्ति सम्बन्धी आपके अन्य सुन्दर विचारों का संग्रह 'our women' पुस्तक रूप में प्रकाशित है।

आज के युग में स्त्रियों को किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है, एक शिष्य के इस प्रकार पूछे जाने पर स्वामीविवेकानन्दजी ने कहा – "छात्राओं को जीवन में सीता, सावित्री, दमयन्ती, लीलावती और मीराबाई का चरित्र सुना–पढ़ाकर अपने जीवन को इसी प्रकार समुज्ज्वल करने का उपदेश दें, इसके साथ ही शिल्प, विज्ञान, गृहकार्य एवं सुरक्षा की शिक्षा भी आवश्यक है। मेरी इच्छा है कि कुछ बालक ब्रह्मचारी एवं बालिकाओं को ब्रह्मचारिणी बनाकर उनके द्वारा देश–देश, गाँव–गाँव में जाकर अध्यात्म का प्रसार कराया जाए । 'ब्रह्मचारिणियाँ' स्त्रियों में अध्यात्म विद्या का प्रसार करें। वर्तमान युग में तो स्त्रियों को यंत्र ही बना दिया गया है। राम ! राम !! राम !!! क्या ऐसे ही भारत का भविष्य उज्ज्वल होगा ?" शिष्य – किन्तु गुरुदेव ! भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में स्त्रियों के लिए कोई मठ बनाने की बात प्राप्त नहीं होती है, बौद्धकाल में हुआ भी तो उसके परिणाम में व्यभिचार बढ़ने लगा था, देशभर में घोर वामाचार सर्वत्र फैल गया था।

स्वामीजी – "मुझे एक बात समझ में नहीं आती कि एक ही चित्–सत्ता सर्वभूतों में विद्यमान है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक वेद ही जिस संस्कृति का मूलाधार हैं, उस देश में स्त्री व पुरुष में इतनी भिन्नता क्यों समझी जाती है ? स्त्री निन्दको ! तुमने स्त्रियों की उन्नति के लिए आज तक क्या किया ? नियम–नीति में आबद्ध करके स्त्रियों को मात्र जनसंख्या की वृद्धि का यंत्र बना डाला। जगदम्बा की साक्षात् मूर्ति है – 'भारत की नारी।'

नारी निंदा मत करो, नारी नर की खान।
नारी से नर ऊपजे, ध्रुव प्रह्लाद समान॥

इनका उत्थान नहीं हुआ तो क्या तुम्हारा उत्थान कभी सम्भव है ?"

शिष्य – "गुरुदेव ! स्त्री जाति तो साक्षात् माया की मूर्ति है, जैसा कि रामचरितमानस में भी लिखा है – "नारि विष्णु माया प्रकट" मानो मनुष्य के अधःपतन के लिए ही स्त्री की सृष्टि हुई है, ऐसी स्थिति में क्या उन्हें भी ज्ञान–भक्ति का लाभ सम्भव है ?"

तब स्वामी विवेकानन्दजी ने अति महत्त्वपूर्ण उपदेश देते हुए कहा कि किस शास्त्र में लिखा है कि स्त्रियाँ ज्ञान–भक्ति की अधिकारिणी नहीं हैं ? जिस समय भारत में ब्राह्मण–पण्डितों ने ब्राह्मणेतर जातियों को वेदपाठ का अनधिकारी घोषित किया, साथ ही स्त्रियों के भी सब अधिकार उस समय छीन लिये गये, अन्यथा वैदिक युग में देखो तो मैत्रेयी, गार्गी..........आदि ब्रह्मविचार में ऋषियों से कुछ कम नहीं रहीं हैं।

ना वेदविन्मनुते तं बृहन्तम्।

(तैत्तिरीय ब्राह्मण – ३/१२/९/७)

तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन।

(बृहदारण्यकोपनिषत्–४/१०/२२)

अर्थात् जिस प्रकार पुरुष ब्रह्मचारी रहकर तप व योग द्वारा ब्रह्मप्राप्ति करते थे, उसी प्रकार कितनी ही स्त्रियाँ ब्रह्मवादिनी ब्रह्मचारिणी हुई हैं।

सर्वाणि शास्त्राणि षडंग वेदान्, काव्यादिकान् वेत्ति, परञ्च सर्वम्। तन्नास्ति नोवेत्ति यदत्र बाला, तस्मादभूच्चित्र- पदं जनानाम्॥

(शंकर दिग्विजय ३/१६)

सभी शास्त्रों, अंगों सहित वेदों व काव्यों की ज्ञाता भारती–देवी से श्रेष्ठ कोई विदुषी नहीं थी।

अत्र सिद्धा शिवा नाम ब्राह्मणी वेद पारगा।
अधीत्य सकलान वेदान लेभेऽसंदेहमक्षयम॥

(महाभारत, उद्योगपर्व १९०/१८)

वेदों में पारंगत 'शिवा' नामक ब्राह्मणी ने सभी वेदों का अध्ययन कर मोक्ष प्राप्त किया।

सहस्त्र वेदज्ञ विप्र–सभा में 'गार्गी' ने ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया। इन सब आदर्श विदुषी स्त्रियों को जब उस समय अध्यात्म ज्ञान का अधिकार था, तब आज क्यों नहीं ?

श्रीप्रह्लादजी ने भी तो यही कहा – **"स्त्रीबालानां च मे यथा"**

(श्रीभागवतजी – ७/७/१७)

स्त्री हो अथवा बालक सबको मेरे समान (प्रह्लाद जैसा) ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

भारतवर्ष की अवनति का कारण ही है – 'नारी शक्ति का विद्रोह रूप अपमान।'

फिर मनुजी ने तो कहा है –

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाक्रियाः॥

(मनुस्मृति–३/५६)

स्वामीजी की प्रबल इच्छा थी कि भारत की अविवाहित बालिकाओं के लिए ऐसा कोई मठ बने, जहाँ उन्हें निःशुल्क आवास, भोजन व शस्त्रों तथा शास्त्रों की समुचित शिक्षा प्राप्त हो सके। जो चिर कौमार्य – वृत का पालन करने की इच्छा रखेंगी, उन्हें मठ की शिक्षिका तथा प्रचारिका बनाया जायेगा, जिससे वे देश–विदेश में जाकर नारी–शक्ति को प्रबुद्ध कर सकेंगी। त्याग, संयम एवं सेवा ही उनके जीवन का व्रत होगा, तब फिर से यह भूमि 'सीता, सावित्री और गार्गी' से सज्जित हो सकेगी। कुछ ब्रह्मवादिनियों के नाम इस प्रकार हैं – **ऋग्वेद की ऋषिकायें –**

घोषा गोधा विश्ववारा, अपालोपनिषन्निषत्।
ब्रह्मजाया जुहूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादितिः॥
इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी।
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती॥
श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक्श्रद्धा मेधा च दक्षिणा।
रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः॥

(बृहद्देवता २/८४, ८५, ८६)

घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषद्, निषद्, ब्रह्मजाया (जुहू), अगस्त्य की भगिनी, अदिति, इन्द्राणी और इन्द्र की माता, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा और नदियाँ, यमी, शश्वती, श्री, लाक्षा, सार्पराज्ञी, वाक्, श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, रात्री और सूर्या – सावित्री आदि सभी ब्रह्मवादिनी हुई हैं। भूल गये, विदेहराज जनक की सभा में महर्षि याज्ञवल्क्य से ब्रह्मवादिनी वाचक्नवी का धर्म के गूढ़ तत्त्वों पर कैसा शास्त्रार्थ हुआ था। वहाँ तो वाचक्नवी के स्त्री होने पर कोई बात नहीं उठायी गई है, फिर आज स्त्री का प्रचारिका बनना, स्त्री का कथा कहना प्रश्नवाचक क्यों है ? आश्चर्य तो यह है कि ऐसे संकीर्ण विचारकों को ही अधिक विद्वान् कहा और समझा जाता है। इससे अधिक कदर्थना क्या होगी ? वस्तुतः न वे धर्मज्ञ हैं, न ही धर्म प्रचारक; हाँ, धर्मध्वजी अवश्य हैं जो भारतीय संस्कृति को स्वतन्त्र स्वदेश में ही पल्लवित होने में परिपन्थी बन रहे हैं। 'भारत व भारतीयता' जिनका प्राण थी और वे स्वयं भारत के प्राण थे ऐसे महामना 'श्रीमदनमोहनमालवीयजी' देश व धर्म का ऐसा कोई कार्य नहीं, जिसमें श्रीमालवीयजी के उदार हृदय ने भाग न लिया हो। बात उस समय की है जब इन्हीं संकीर्ण विचारों के चलते 'कल्याणी' नामक छात्रा को हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी में बहुत आग्रह करने पर भी वेद–कक्षा में प्रवेश प्राप्त नहीं हुआ। विद्वान् कहे जाने वाले संकीर्ण विचारकों का कथन था कि स्त्रियों को वेदाधिकार नहीं है। विवादों में एक ओर समर्थन था तो दूसरी ओर विरोध। समय व्यतीत होता रहा, निर्णय तक कोई नहीं पहुँच सका। अन्त में 'हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी' ने धर्मप्राण 'श्रीमालवीयजी' की अध्यक्षता व अनेकों गणमान्य विद्वानों की उपस्थिति में शास्त्रों के आधार पर विचार–विमर्श के उपरान्त यह निर्णय दिया – "स्त्रियों को भी पुरुषों की भाँति वेदाधिकार है।" २१ अगस्त सन् १९४६ को स्वयं महामना मालवीयजी ने इस निर्णय की घोषणा की। तदनुसार कुमारी 'कल्याणी' को वेद–कक्षा में प्रवेश प्राप्त हुआ और विद्यालय में स्त्रियों के वेदाध्ययन पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध न रहने का निर्णय हुआ। अब भी कोई दुराग्रह करे तो इसका कोई उपचार नहीं। लोकापवाद तो सीताजी के अग्नि–परीक्षा दिये जाने पर भी समाप्त न हो सका था किन्तु इतना अवश्य है, ऐसे हठ–धर्मी 'धर्मप्रेमी' तो कदापि नहीं किन्तु काष्ठ के घुन की भाँति धर्म को खोखला करने की पहल अवश्य कर रहे हैं।

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम्॥ (श्रीभागवतजी २/२/३६)

वे हरि सर्वत्र हैं, सर्वस्थानीय हैं, उन भगवान् का दिन–रात श्रवण करो, उन्हीं का कीर्तन करो, उन्हीं का स्मरण करो, यही कल्याण का एकमात्र मार्ग है और कुछ नहीं है

'भागवत–धर्म' में सर्वाधिकार

श्रुतिः स्मृति उभे नेत्रे विप्राणां प्रकीर्तिते।
एकेन विकलः काणः द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः॥

(हारीत संहिता)

श्रुति व स्मृति का ज्ञान ही ब्राह्मण के दो नेत्र हैं, इनमें से यदि एक का भी ज्ञान नहीं है तो वह काना है और यदि दोनों के ही बोध से रहित है तो वह अन्धा है।

किन्तु भागवत धर्म वह मार्ग है जहाँ अन्धा भी स्खलन, पतन के भय से सर्वथा मुक्त होकर दौड़ सकता है। योगेश्वर श्रीकविजी के वचन –

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये।
अञ्जः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान्॥

(श्रीभागवतजी ११/२/३४)

भोले–भाले अज्ञानी जन भी सुगमता से भगवत्प्राप्ति कर सकें, इसके लिये स्वयं श्रीभगवान् ने अपने मुख से जो मार्ग बताया है, वही "भागवतधर्म" है। यह भागवतधर्म अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तो है ही, गोपनीय होने से स्वयं श्रीभगवान् के मुख से ही प्रकट हुआ है, अन्यथा वर्णाश्रम धर्मों की भाँति मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर आदि स्मृतिकारों से भी प्रकट कराया जा सकता था।

यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित्।
धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह॥

(श्रीभागवतजी ११/२/३५)

सबसे प्रथम बात 'भागवतधर्म' मनुष्यमात्र का धर्म है। यह इस धर्म की महत्ता है कि बड़े–बड़े विघ्न भी भागवतधर्मावलम्बी को चलायमान नहीं कर सकते हैं। यह वह सुगम राजपथ है, जिस पर अन्धा व्यक्ति भी स्खलन–पतन के भय से मुक्त होकर दौड़ते हुए जा सकता है। 'नेत्रनिमीलन' से तात्पर्य जिसे श्रुति–स्मृति दोनों का ही ज्ञान नहीं है, ऐसी स्थिति में उससे यदि किसी विधि–विधान का अतिक्रमण भी हो जाएगा तो भी दोष न लगकर उसे फल–प्राप्ति ही होगी।

वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा।

(श्रीभागवत–माहात्म्य २/६७)

वेद–उपनिषद् 'वृक्ष' ठहरे और श्रीमद्भागवत गलित मधुर फल। 'फल' की मधुरता, उपयोगिता को वृक्ष कभी प्राप्त नहीं कर सकता है। इसी कारण कहीं–कहीं स्मृतियों से विरोध भी देखा गया है, स्वयं श्रीभगवान् ने किया – यथा स्मृति–ग्रन्थों में समुद्र–यात्रा का निषेध किया गया है किन्तु भगवान् श्रीराम ने समुद्र के पार सेतु–निर्माण कर समुद्र–यात्रा की एवं भगवान् श्रीकृष्ण ने तो समुद्र में ही द्वारिका का निर्माण कराके निवास किया। देश, काल परिस्थितियों के अनुसार स्वयं भगवान् ने भी स्मार्त–मर्यादा को स्वीकार नहीं किया (सभी धर्मों को छोड़कर 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' मात्र वैष्णवधर्म का समर्थन किया)।

धन्य है, यदि स्मार्त–मर्यादा को मानकर सेतु–निर्माण कर समुद्र–यात्रा न करते तो पापिष्ठ रावण का वध कैसे होता ? भगवान् श्रीकृष्ण यदि द्वारिका का निर्माण करा समुद्र–निवास न करते तो दुष्ट कालयवन का वध कैसे होता ? अतः धर्म को प्रधान रखते हुए, स्मार्त–मर्यादा के विरुद्ध आचरण करते हुए भी भगवान् को देखा गया है।

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्। धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः सः पन्थाः॥

(महाभारत, वनपर्व – ३१३/११७)

तर्केऽप्रतिष्ठा श्रुतयो विभिन्नाः नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्। धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

(गरुड़पुराण – १, १०९.५१)

भारत के कट्टर स्मार्त लोग समुद्र–पार करके देशान्तरों में सनातन–धर्म का प्रचार करने नहीं गये, अतः निरन्तर धर्म का संकुचन ही होता रहा। इसके विपरीत बौद्धों के द्वारा विदेशों में बौद्ध–धर्म का व्यापक रूप से प्रचार–प्रसार हुआ। परिणाम में थाइलैण्ड, बर्मा आदि सम्पूर्ण मध्य एशिया बौद्धधर्मावलम्बी हो गया।

कोई समय था, जब एक सनातन–धर्म ही समग्र विश्व में था। हमारे पौराणिक इतिहास के अनुसार सातों द्वीप सनातनी थे। श्रीमद्भागवत के अनुसार –

अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम्।

(श्रीभागवतजी ९/४/१५)

सूर्यवंशी महाराज अम्बरीष सातों द्वीपों के सम्राट थे। जो परम कृष्णभक्त थे (महाराज अम्बरीष की अनन्य कृष्णभक्ति ९/४/१८–२१ में दृष्टव्य है) अम्बरीषजी की ही भाँति उनकी सम्पूर्ण प्रजा (सप्तद्वीपों की प्रजा) भी उत्तमश्लोक भगवान् 'श्रीहरि की कथा' प्रेम से श्रवण करती तो कभी गान करती, इसके अतिरिक्त प्रजाजनों को स्वर्ग की भी कोई इच्छा नहीं थी।

मध्यएशिया में बौद्धधर्म के प्रचार से हानि यह हुई कि अहिंसा प्रधान बौद्ध–धर्मावलंबियों पर अपनी क्रूरता, कट्टरता, हिंसा–प्रधानवृत्ति के लिए कुख्यात यवनों ने धर्मान्तरण कराके उन्हें यवन बना डाला।

भारत में क्या–क्या कहर बरसाया गया था।

क्रूरकर्मा फिरोजशाह तुगलक के समय में हिन्दू पुजारी व प्रचारकों को जीवित ही आग में फेंक दिया जाता था। बाबर का पूर्वज तैमूर लंग तो ९० हजार सैनिक लेकर मेरठ, हरिद्वार, शिवालिक, नगरकोट व जम्मू तक मन्दिरों–मूर्तियों का भंजन व इस्लाम न स्वीकार करने वाले हिन्दुओं का कत्लेआम करता रहा।

बुद्धदेव नामक हिन्दू धर्म प्रचारक का मस्तक धड़ से अलग कर दिया था। सिक्खों के पंचम गुरू श्री अर्जुनदेव को क्या कम अमानुषिक यातनाएं दी गयीं, धधकते अंगारों पर बिठाया गया, ऊपर से जलती हुई बालू बरसाई गई, इतना ही नहीं, गाय की ताजी खाल खींचकर उसमें लपेटकर सिलने का उपक्रम भी किया गया और नवम गुरू श्री त्यागराय (तेग बहादुर) पर क्रूर मुगल औरंगजेब के अत्याचार आज भी हृदय में प्रतिकार की ज्वाला को भड़का देते हैं। लोहे के गर्म खंबे से चिपकाया जाना, जलती हुई बालू बरसाना और अन्त में धड़ से मस्तक अलग कर दिया जाना, क्या यह मनुष्यों का कार्य हो सकता है ? दशम गुरू गोविन्द सिंह के दो पुत्र जोरावरसिंह व फतेह सिंह को इस्लाम धर्म स्वीकार न करने पर जीवित ही दीवार में चिन दिया गया। कहाँ तक करें इन क्रूरों की असच्चर्चा, भारत भूमि के तो बलिदानियों की नामावली से ही एक नया ग्रन्थ बन सकता है। बौद्धों पर भी इन नरपिशाचों का कहर कुछ कम नहीं था। अभी कुछ समय पूर्व ही बामियान, मध्य एशिया में संसार की सबसे विशाल बुद्ध मूर्ति को तोड़ा गया और धर्मान्तरण की परम्परा तो अब तक जीवन्त है। संकीर्णताओं ने इतना दुर्बल कर दिया हिन्दू समाज को कि कश्मीर के महाराज ने घोषणा की, जिन हिन्दुओं का बलात् धर्मान्तरण करा मुसलमान बनाया गया है, वे पुनः हिन्दू धर्म स्वीकार कर सकते हैं किन्तु इस पर काशी के विद्वत्समाज ने ही विद्रोह खड़ा कर दिया कि अब उन्हें स्वीकार नहीं किया जायेगा। ऐसे वेदज्ञान से बहुत बड़ी हानि हुई इस राष्ट्र व धर्म की।

भूल गये अपने ऋषियों का आचरण –

सरस्वत्यज्ञया कण्वो मिश्र देशमुपाययो।
म्लेच्छान् संस्कृत्यं चाभाष्य तदा दश सहस्रकम्॥

(भविष्यपुराण ४/२१/१६)

सरस्वती की आज्ञा से महर्षि कण्व मिस्र देश गये और वहाँ दस हजार म्लेच्छों को उन्होंने सुसंस्कृत बनाया। जो शुद्ध व पवित्र होकर भारत लौटना चाहते थे उन्हें पुनः स्वीकार कर लिया गया। महाराष्ट्र के 'चित्पावन ब्राह्मण' आज महान वेदज्ञ माने जाते हैं, जो वंशानुगत यहूदी और मिस्र देश के आसपास से आये हुए हैं। इसी प्रकार ईरानी, शक, हूण, मग एवं यहूदी आदि अनेक जातियों ने हिन्दू संस्कृति को अपनाया और उन्हें ऋषियों द्वारा स्वीकार किया गया।

'स्मृति' में भी स्त्री–समर्थन –

आज हठधर्मिता के कारण मनुष्य इतना अन्धा हो गया कि श्रुति–स्मृति धर्मों के सिद्धान्त भी यथार्थ रूप से न समझते हुए मात्र दुराग्रह में ही पड़ा हुआ है।

ध्यान रहे, सबसे प्रमुख स्मृति शास्त्र तो श्रीमद्भगवद्गीता ही है। जहाँ स्वयं श्री भगवान् ने कहा है – **मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः**

पापयोनयः । स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ (श्रीगीताजी ९/३२)

पापयोनि होते हुए भी स्त्री, वैश्य और शूद्र सर्वथा मेरे शरणागत होकर मुझे प्राप्त कर लेते हैं। कहाँ है स्मृति में स्त्रियों का बहिष्कार। स्मृति–शास्त्र का अन्तिम उद्घोष है – **सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥** (श्रीगीताजी – १८/६६)

सभी धर्मों को त्याग कर मेरे शरणागत हो जाओ। सर्वधर्मान् से वैदिक धर्म, श्रुति धर्म, स्मृति धर्म, सबका ग्रहण हो जाता है।

सर्वश्रेष्ठ 'वैष्णवधर्म'

श्रीभागवतधर्म में विषमता नहीं है – **नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च । अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥ एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च । साधवे शुचये ब्रूयाद् भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥** (श्रीभागवतजी ११/२९/३०, ३१)

श्रीभगवान् का आदेश है – दाम्भिक, नास्तिक, शठ, अश्रद्धालु, भक्तिहीन एवं अविनीत पुरुष को यह उपदेश कभी मत देना। जो इन दोषों से रहित ब्राह्मण भक्त हो, प्रेमी हो, साधु–स्वभाव हो और पवित्र चरित्रवान हो उसी को यह उपदेश सुनाना चाहिए। मेरे प्रति प्रेम रखने वाले स्त्री, शूद्र भी हैं तो उन्हें अवश्य ही यह उपदेश करना चाहिए। **"नमो महद्भ्योऽस्तु नमः शिशुभ्यो नमो युवभ्यो नम आ वटुभ्यः । ये ब्राह्मणा गामवधूतलिङ्गाश्चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ॥"** (श्रीभागवतजी ५/१३/२३)

शिशु हो, युवा हो, क्रीड़ारत बालक हो अथवा ब्रह्मज्ञानियों में वयोवृद्ध हो वह पूज्य है। इससे विपरीत भक्तिहीन पुरुषों को भागवत में अधिकार नहीं है और ऐसे ही लोग "मन क्रम बचन लबार तेहि वक्ता कलिकाल महँ ॥" आजकल वक्ता बनकर संकीर्णता का प्रसार कर रहे हैं जबकि भगवान् वेदव्यास ने वैदिक–संकीर्णताओं के उन्मूलन हेतु भागवत–धर्म का प्राकट्य किया। श्रौत, स्मार्त धर्मों में अवश्य स्त्री, शूद्र का बहिष्कार है किन्तु वैष्णव–धर्म में इस संकीर्णता को कोई स्थान नहीं है। मेहा धीमर की स्त्री 'जीवाबाई' एवं रजोदर्शन 'सद्या प्रसूता' में 'वारमुखी' का रंगनाथ को मुकुट धारण कराना क्या प्रमाण नहीं है ? श्रीमद्भागवत में उत्तरा के गर्भ में भगवान् का प्रवेश भी परम प्रमाण है। भक्तिहीन पुरुष ही श्रीभगवान् और श्रीमद्भागवत पर भी अपने संकीर्ण विचार आरोपित करते हैं, उन्हें भगवान् के ये वाक्य भी समझ में नहीं आते हैं। **भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम् । भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ॥** (श्रीभागवतजी ११/१४/२१)

श्रीभगवान् के वचन – मैं सन्तों का प्रिय और आत्मा हूँ, मेरी प्राप्ति श्रद्धा व अनन्य भक्ति से ही होती है। मेरी अनन्य भक्ति में यह सामर्थ्य है कि वह जन्मजात चाण्डाल को भी अत्यन्त पवित्र बना देने वाली है। **धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता । मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥** (श्रीभागवतजी ११/१४/२२)

भक्तिहीन को सत्य, दया, तपस्या एवं विद्या भी भलीभाँति पवित्र नहीं कर सकेगी, इस दृष्टि से तो संकीर्ण विचारकों से भक्तियुक्त चाण्डाल भी श्रेष्ठ है। अनन्यता का दावा करने वाले भक्त नहीं, भगवद्–द्रोही हैं। स्वयं भगवान् श्रीराम ने शबरी के प्रति कहा – **जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ॥ भगति हीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥** (श्रीरामचरितमानस, अरण्यकाण्ड – ३५)

जिस पाप व कष्ट को अन्य साधन नष्ट नहीं करते, उसे धाम नष्ट कर देता है। श्रीपाद प्रबोधानंदजी ने तो यहाँ तक कह दिया कि यदि कोई पतित, नीच या साधनहीन भी है और यदि वह भी निष्ठा से धाम का आश्रय ले ले तो वह अवश्य धामी (भगवान् ; श्रीकृष्ण) से मिल जायेगा।

भाव–भक्ति का स्वरूप 'नारी–शक्ति'

भक्तिहीन मनुष्य जलहीन बादल की भाँति शोभाहीन है। भक्ति में जातिगत विषमता का कोई स्थान नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी तो भगवान् ने कहा –

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्यु पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ (श्रीगीताजी ९/३०, ३१, ३२)

संसार में जितनी भी पाप योनियाँ हैं, ये सभी परागति प्राप्त कर लेती हैं। संकीर्ण लोगों को चाहिए कि वे ठीक से भागवत–धर्म समझें, विषैली आलोचनाओं के द्वारा समाज को विषमता का विष न पिलाएँ। स्वयं भगवान् ने (भा. ६/१६/४१, ४२) में जो भागवतधर्म का उपदेश किया है, क्या आलोचक वक्ताओं को ये सिद्धान्त दिखाई नहीं पड़ते ? क्या दिवा–उलूक हैं ? कहाँ है भागवतधर्म में विषमता –

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ।
सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥
न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥

(श्रीभागवतजी ११/२/५१, ५२)

न वर्णाश्रमगत भेद है, न जातिगत भेद ही, न जन्मगत भेद है, न कर्मगत। यहाँ तक कि देह–धर्मों का भी भेद नहीं है। ऐसा सर्वभूत शम ही उत्तम भागवत है।

श्रौत–स्मार्त धर्म की कट्टरता को नासमझ लोग भागवतधर्म में घटाने लगते हैं। भक्तमाल से वारमुखी की कथा इन्हें सुनाई जाए तो आनन्द के स्थान पर अपार कष्ट ही होगा। भक्त रविदास, श्वपच वाल्मीकि आदि की कथा सुनने से तो प्राणान्त ही हो जाएगा।

मात्र शुद्ध भक्तों को ही इन चरित्रों के कथन, श्रवण से आनन्द की प्राप्ति होगी, अन्य तो कुतर्कों के मकड़जाल में ही फँसे रहेंगे।

ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः ।
यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥

(श्रीभागवतजी २/६/४०)

श्रीब्रह्माजी ने कहा – नारद ! शान्त अन्तःकरण, इन्द्रियाँ एवं शरीर से ही उस परम तत्त्व का साक्षात्कार किया जा सकता है। असत् पुरुषों के द्वारा कुतर्कों का बिछा हुआ जाल तो उसे ढक ही देता है।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

(श्रीगीताजी ९/३)

श्रीभगवान् ने कहा – ऐसे श्रद्धा रहित लोग मुझे प्राप्त न करके मृत्यु रूप संसार चक्र में ही भटकते रहते हैं। जिस समय गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक गौ–हत्यारे को 'भगवन्नाम' से शुद्ध कर अपने साथ भोजन कराया, उस समय रुष्ट होकर काशी के विद्वत् समाज ने उन्हें बहिष्कृत कर दिया जबकि श्रीमद्भागवत में शुकाचार्य का कथन है –

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाघवान् ।
श्वादः पुल्कसको वापि शुद्ध्येरन् यस्य कीर्तनात् ॥ (श्रीभागवतजी ६/१३/८)

ब्राह्मण, पिता, गौ, माता, आचार्य की हत्या करने वाले महापापी भी 'भगवन्नाम–संकीर्तन' से शुद्ध हो जाते हैं।

हयमेधेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम् ।
दृष्ट्वा नारायणं देवं मोक्ष्यसेऽपि जगद्वधात् ॥

(श्रीभागवतजी – ६/१३/७)

एक ब्राह्मण और गौ का वध करने वाला ही नहीं सम्पूर्ण संसार का वध करने वाला महापातकी भी भगवद्–आराधन से पातक–मुक्त हो जाता है। 'संकीर्ण, नास्तिक, अश्रद्धालुजन' इन सिद्धान्तों को कभी नहीं समझ सकते, भले आजीवन कथा कहें अथवा सुनें; इनका कथा–कथन मेढकों की ध्वनि की भाँति ही है। **दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई ।**
बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ॥

(श्रीरामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड – १५)

श्रीमद्भागवत का अन्तिम उद्घोष है –

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥

(श्रीभागवतजी १२/१३/२३)

'भगवन्नाम' से सर्वपाप अर्थात् सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। क्या सर्वपाप में रजोदर्शन रूप ब्रह्महत्या की शुद्धि नहीं होगी ? "स्त्री को कथा कहने का अधिकार नहीं" इस प्रकार की बातें भागवतधर्म के प्रति अश्रद्धा, अविश्वास को प्रकट करती हैं। वैष्णव धर्म ने वैदिक धर्म मर्यादाओं के तट बन्धनों को तोड़कर भगवन्नाम की सबको अधिकारिता प्रदान की, जिससे विश्व में शान्ति व सद्भाव की वृद्धि हुई। धन्य हैं वे धर्मप्रचारक व धर्म प्रचारिणी संस्थाएं जिनके द्वारा सम्पूर्ण विश्व में 'श्रीभगवान् के नाम–संकीर्तन' रूप वैष्णवधर्म का प्रचार–प्रसार हुआ व हो रहा है। 'श्रीभगवन्नाम–संकीर्तन' का प्रचार–प्रसार करना ही कलिपावनावतार 'श्रीमच्चैतन्यमहाप्रभुजी' की सच्ची सेवा है। सनातन–धर्म अन्य संस्कृतियों की भाँति 'नारी शक्ति' को धकेलने, कुचलने वाला धर्म नहीं है। यहाँ तो 'नारी' को साक्षात् ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है, सम्पूर्ण सृष्टि की उद्भव, स्थिति व संहारकारिणी आद्यशक्ति को पराशक्ति के रूप में स्वीकार किया है।

मीरा, करमैती, रत्नावती ही नहीं दक्षिण में आण्डा (रंगनायकी), आवडयक्काल, इस्लाम में ताज, रबिया, हसीना–हमीदा एवं विदेश की डॉ. एनी बेसेंट, जिनका जन्म आयरलैण्ड व लालन–पालन इंग्लैण्ड में हुआ किन्तु भारत को जन्मभूमि मानने वाली यह महिला सनातन धर्म से बहुत प्रभावित थी। इसी प्रकार रूस की एच.पी.ब्लेवास्तकी, इटली की फ्लोरेन्स, साध्वी मेरी मगडालेन, अवीलाका ओल्ड केसराइल की कुमारी टेरसा, हंगरी की साध्वी एलिजाबेथ, अलक्जेन्डरिया (मिश्रदेश) की देवी सिंक्लेटिका, सायेना, इटली की साध्वी कैथेरीन ....आदि विदेशी महिलायें नारी शक्ति को ब्रह्मरूप में देखने वाली भारतीय संस्कृति से प्रभावित थीं।

जहाँ वैष्णवधर्म ने नारी–शक्ति को इतना सम्मान दिया, वहीं स्मार्त–धर्म ने नारी–शक्ति को बाँध दिया।

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैर्लोकान्
विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान् । धर्मं
महापुरुष पासि युगानुवृत्तं छन्नः कलौ
यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥

(श्रीभागवतजी ७/९/३८)

देश, काल, परिस्थिति के अनुसार धर्म में जो परिवर्तन आता है, उसे ही युगानुवृत्त कहा गया है।

'वैष्णवधर्म' युगानुवृत्त–धर्म है किन्तु इसका अर्थ मनमानेपन को धर्म के रूप में सिद्ध करना नहीं है। स्वतन्त्रता है, किन्तु स्वच्छन्दता नहीं। अपने देश व धर्म को सशक्त व समृद्ध बनाने के लिए सम्पूर्ण नारी–शक्ति को आगे आना चाहिए। हमारी आर्य संस्कृति में नारी ही माता के रूप में प्रथम गुरु है। यदि नारी शक्ति प्रबुद्ध होगी तो देश प्रबुद्ध होगा। नारी शक्ति प्रबुद्ध होगी तो प्रत्येक बालक का भविष्य उज्ज्वल होगा। आलोचकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि किसी 'स्त्री' में सनातन भागवत धर्म का प्रचार करने की क्षमता है तो उसका विरोध करने से निश्चित ही वे भगवद् कोप के भाजन होंगे। भूलो मत एक रत्नावती के अपराध से सिंह रूप में आये साक्षात् नृसिंह द्वारा आलोचकों को उचित दण्ड प्राप्त हुआ और एक मीरा के अपराध से सारा चित्तौड़ त्राहि–त्राहि करने लगा था।

"छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम्"

(श्रीभागवतजी ३/१६/६)

'वैष्णवापराध' तो यदि उनकी (भगवान् की) अपनी चिन्मयी भुजा भी करती है तो वे उसे भी दण्डित करेंगे।

दूरे हरिकथाः केचिद् दूरे चाच्युतकीर्तनाः ।
स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम् ॥

(श्रीभागवतजी ११/५/४)

स्त्री, शूद्र तो विशेष दया के पात्र हैं क्योंकि बार–बार धकेले जाने से ये कथा–कीर्तन से दूर हो गये हैं, अतः इनके कथा–कीर्तन की सुविधा का अवश्य ध्यान रखा जाए । स्वयं जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण इस सिद्धान्त के पोषक हैं – **मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः**

पापयोनयः । स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ (श्रीगीताजी – ९/३२)

स्त्री हो अथवा शूद्र, 'वैष्णव-धर्म' में सबका समान अधिकार है। परागति की प्राप्ति के सब अधिकारी हैं। यही सिद्धान्त गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी से भी स्पष्ट हुआ है –

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न । (श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – १८)

'गिरा' शब्द स्त्रीलिंग है व 'अरथ' पुल्लिंग, पुनः 'जल' पुल्लिंग है व 'वीचि' स्त्रीलिंग। कहने-सुनने में भेद है, स्वरूपतः दोनों का अभेद ही हैं।

फिर बिना शक्ति के कोई उपासना पूर्ण नहीं होगी। भगवान् शिव को अर्द्धनारीश्वर कहा गया। वैष्णवों में भी युगल (शक्ति एवं शक्तिमान) उपासना है।

लक्ष्मी-नारायण, राधा-कृष्ण, सीता-राम, उमा-महादेव ....आदि।

भागवत-धर्म अथवा वैष्णव-धर्म की उदारता –

सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः ।
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥
विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः ।
रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन् युगेऽनघ ॥

(श्रीभागवतजी११/१२/३,४)

दैत्य-राक्षस, पशु-पक्षी, गन्धर्व-अप्सरा, नाग-सिद्ध, चारण-गुह्यक, विद्याधर, मनुष्यों में वैश्य, शूद्र, स्त्री और चाण्डालादि, राजसी-तामसी प्रकृति के अनेक जीवों ने परमपद की प्राप्ति की। जैसे – वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयदानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार वैश्य, धर्म व्याध, कुब्जा, ब्रजगोपीजन, यज्ञपत्नियाँ आदि।

श्रीउद्धवजी के वचन –

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ।
नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा-
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥

(श्रीभागवतजी १०/४७/५९)

ये वनचरी ब्रजगोपीजन जो व्यभिचार से दूषित, ज्ञान एवं जाति से भी हीन हैं, किन्तु धन्य है श्रीकृष्ण में इनके अनन्य प्रेम को। इससे सिद्ध होता है कि भगवान् से प्रेम करने के लिए आचार, जाति और ज्ञान की अपेक्षा नहीं होती है। भला, अमृत पीने में भी आचार, जाति और ज्ञान की क्या अपेक्षा ?

धिग् जन्म नस्त्रिवृद् विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम् ।
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥

(श्रीभागवतजी १०/२३/३९)

और इसके विपरीत श्रीकृष्णविमुखता में उच्च कुल, ज्ञान, यज्ञ, व्रतादि की भी सार्थकता नहीं है।

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥

(श्रीभागवतजी१०/४७/५८)

श्रीउद्धवजी ने 'श्रीकृष्ण' में प्रेम होने से वनचरियों का जीवन ही सफल व श्रेष्ठ माना; इससे रहित होने पर तो ब्रह्मा का जन्म भी व्यर्थ है।

मान लीला, मान मन्दिर, बरसाना

मानशिला, मानमन्दिर

गौ–संवर्द्धन’ से होगा विश्वगुरु ‘भारतवर्ष’

इस धराधाम की आधार है – श्रीगौमाता।

जानते हो, इस आधार पर प्रथम प्रहार किया था कलियुग ने। उस कलियुग का दमन तो कर दिया श्रीपरीक्षित जी ने किन्तु अब कलियुग के अनेकों बाप–दादा आ गए हैं। जो इस आधार स्तम्भ को विदीर्ण करने के लिए निर्ममता से अघ्न्या (अवध्या) गौ का वंदन के स्थान पर हनन कर रहे हैं।

श्रीकृष्ण के अवतार से न केवल भारत की प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व की रक्षा हुई थी। गोपियाँ कहती हैं –

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम्।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम्॥

(श्रीभागवतजी १०/३१/१८)

कृष्ण ! तुम्हारे आने से विश्व मंगल हुआ। कैसे ? तुमने गौ–सेवा की। गोपालक ही गोपाल का बालक है। सम्पूर्ण संसार जानता है कि गवामृत से शुद्ध–बुद्धि, पवित्र–चरित्र का निर्माण होता है। बुद्धि यदि शुद्ध है तो राग–द्वेष, कलह–विषाद स्वतः संसार से नष्ट हो जाए, प्रेम का संचार हो जाए। यदि आज अनाद्या अवध्या गौ का वध बंद हो जाए तो भारतवर्ष सशक्त व स्वराट् बन जाए। गो–गोपाल के सेवक का कदापि कोई अभद्र नहीं हो सकता है।

किसने नहीं की गौ–सेवा ?

विधि–हरि–हर ने स्वयं गौ–स्तवन किया। महदपराध होने पर ऋषियों से शप्त होकर शिवजी ने गोलोक जाकर सुरभि का स्तवन किया। सुरभि ने स्नेह पूर्वक शिवजी को गर्भस्थ कर लिया। देवगणों ने ढूँढ़ते हुए गोलोक में स्थित सुरभि से प्रार्थना की, तब सुरभि ने एक वत्स को जन्म दिया जो नीलवृषभ बोले गए। यही पंचानन थे। गोपाल की गौभक्ति तो वाणी का विषय ही नहीं बन पाती। जब चलना सीखा तो सर्वप्रथम वत्स आश्रय ही लिया –

यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीला वन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः। वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः॥

(श्रीभागवतजी १०/८/२४)

वत्स पुच्छ पकड़कर इस बालक ने खड़ा होना सीखा। गोबर का उबटन लगाते एवं गौमूत्र से स्नान करते। शेष इच्छा गौचारण में पूरी हो जाती, जिस समय सघन केशराशि गौधूलि से भर जाती। गोपियों ने कहा है – **उत्सवं श्रमरुचापि दृशीनामुन्नयन् खुररजश्छुरितस्रक्। दित्सयैति सुहृदाशिष एष देवकीजठरभूरुडुराजः॥** (श्रीभागवतजी १०/३५/२३)

अभी दूध के दाँत भी नहीं गिरे और वत्सचारण की हठ कर बैठे। नन्ददम्पत्ति ने विचार किया –

यदि गोपसङ्गावस्थानं बिना न स्थातुं पारय
तस्तर्हि व्रजसदेशदेशे वत्सानेव तावत्सञ्चारयतामिति।

(गोपालचम्पू – १०/११)

बड़े चंचल हैं ये दोनों, गौ दर्शन के बिना रह नहीं सकते –“**आगे गाय पाछे गाय इत गाय उत गाय। गोविन्द को गायन में बसवो ही भावे॥**” (श्रीछीतस्वामीजी) चलो वत्स चारण का तिलक तो कर ही दें। पाँचवा वर्ष पूरा होते–होते तो ये गौचारण के लिए मचल बैठे। **श्रीशुक उवाच –**

ततश्च पौगण्डवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदै र्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः॥

(श्रीभागवतजी १०/१५/१)

कार्तिक शुक्ल अष्टमी को यह स्वीकृति भी मिल गई मैया–बाबा से फिर एक दिन गौदोहन की हठ भी कर बैठे।

गोपालानं स्वधर्म्मो नस्तास्तु निश्छत्र–पादुकाः।
यथा गावस्तथा गोपास्तर्हि धर्म्मः सुनिर्म्मलः॥
धर्म्मादायुर्यशोवृद्धिर्धर्म्मो रक्षति रक्षितः।
स कथं त्यज्यते मातर्भीषुधर्म्मः सुनिर्म्मलः॥

(गोविन्दलीलामृत – ५/२८,२९)

उपरोक्त में उल्लिखित है कि गौचारण काल में कभी पन्हैया भी नहीं पहनी।

कैसी विचित्र है गोपाल की गौभक्ति ?

श्रीसूरदासजी के शब्दों में –

दे मैया री दोहिनी दुहि लाऊँ गैया।
माखन खाय बल भयो तोहि नन्द दुहैया॥
सेंदुर काजर धुमरी धौर मेरी गैया।
दुहि लाऊँ तुरतहि तब मोहि कर दै घैया॥
ग्वालन के संग दुहत हों बूझो बल भैया।
'सूर' निरख जननी हँसी तब लेत बलैया॥

ऐसे एक नहीं सैंकड़ों पद प्राप्त हैं – गौचारण लीला, गौदोहन लीला सम्बन्धी गौभक्ति के। दानलीला में मिलता है कि ब्रजगोपी ने कहा – "लाला कैसे छुटोगे पाप ते काहू तीर्थ हू नहिं न्हात हौं।" श्रीकृष्ण ने कहा – "प्यारी गौरज गंगा नहात हौं और जपत गऊन के नाम हौं। वृषभान लड़ैती दान दै॥"

ब्रजाङ्गना बोली – "नंदराय लला घर जान दै।"

गोपालाङ्गण कर्दमे विहरसे विप्राध्वरे लज्जसे।
ब्रूषे गोसुत हुंकृतैः स्तुतिपदैर्मौनं विधत्से सतां॥

(कृष्णकर्णामृत)

बड़े–बड़े योगीन्द्रों–मुनीन्द्रों के मन्त्रों द्वारा आहूत करने पर भी बोलते नहीं हैं और यहाँ

वत्सों से पूछते हैं – "धौरी के तेरी मैया ने दूध पिवायौ कि नहीं ?" वत्स – "हूँ ऽऽऽऽऽऽ !" श्रीराम–कृष्ण ने जिनकी वंदना की उस गौमाता की सेवा ही सच्ची राष्ट्र सेवा व सच्ची भगवदाराधना है। यह भगवद्–संपदा (गौ) पृथ्वी के लिए वर व भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड है। ऐहिक हो अथवा आमुष्मिक, परम श्रेय–सिद्धिकारक है – गौसेवा। श्रीवशिष्ठजी की गौसेवा बड़ी ख्यात है, इनको गौ– तत्ववेत्ताओं का आद्याचार्य कहा। महाभारत में राजा सौदास को आपने गौसेवा–धर्म का उपदेश दिया – गौओं का नाम कीर्तन किए बिना न सोएँ और उनका स्मरण करके ही प्रातः उठें – **नाकीर्तयित्वा गा: सुप्यात् तासां संस्मृत्य चोत्पतेत्। सायंप्रातर्नमस्येच्च गास्तत: पुष्टिमाप्नुयात्॥**

(महाभारत, अनुशासनपर्व – ७८/१६)

गाश्च संकीर्तयेन्नित्यं नावमन्यते तास्तथा।
अनिष्टं स्वप्नमालक्ष्य गां नर: सम्प्रकीर्तयेत्॥

(महाभारत,अनुशासनपर्व – ७८/१८)

जिन श्रीवेदव्यासजी का उच्छिष्ट है सम्पूर्ण वैदिक साहित्य ''**व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्**'' आपने भी अपने समग्र साहित्य में 'गौसेवा' को ही प्रमुख माना, चाहे वह स्कन्द पुराण हो, भविष्य पुराण हो, पद्म पुराण हो, अग्नि पुराण अथवा महाभारत हो सर्वत्र 'गौ–गरिमा' का ही वर्णन है। च्यवन ऋषि ने तो राजा द्वारा एक गाय दिए जाने पर कहा – "**महाराज ! आपने मुझे खरीद लिया**।" महाराज ऋतम्भर ने अपूर्व गौसेवा की, जाबाल पुत्र सत्यकाम को गौसेवा से ही ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हुई, महाराज दिलीप ने गौभक्ति से रघु जैसे परम यशस्वी पुत्र को प्राप्त किया, जिससे वंश का नाम ही रघु वंश हो गया, नामदेव ने मृत गाय को जीवित किया। कैसा विलक्षण था उनका गौ–प्रेम। कलिकाल में भी वीर बालक शिवाजी तो शैशव से ही गौभक्त थे। गौ पर होने वाले अत्याचार को नहीं देख सकते थे। गौप्राणरक्षणार्थ अनेकों बार अकेले कसाईयों से भिड़ गए। गौवधिकों का वध भी कर डाला। समस्त समस्याओं का निदान 'गौ–सेवा' से ही होता है। आर्थिक समृद्धि का मुख्य स्रोत है – गाय। देश की लगभग ८०% जनता कृषि जीवी है, वह कृषि पूर्णरूपेण गौ पर अवलंबित है। गोमय से बढ़ती है पृथ्वी की उर्वरा शक्ति। गोबर की खाद से उत्पन्न अन्न से न केवल शरीर अपितु मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ भी शुद्ध, स्वच्छ व शक्तिसंपन्न होती हैं। **"अन्नशुद्धौ सत्वशुद्धि, सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृति..."** आज भी गौवंश की उपेक्षा न करके उसी से कृषि कार्य सम्पादित हो तो न गौवध हो, न जनवध। आज की मँहगाई ने जनवध कर दिया। डीजल, पेट्रोल की आए दिन मँहगाई वृद्धिरत है, क्या आवश्यकता है डीजल, पेट्रोल की ? गोबर गैस से सब कार्य किये जायें ? गोबर गैस से चलित वाहन आज तेजी से हो रहे वायु प्रदूषण पर भी रोक लगायेगा।

श्रीराधेरानी मोहि अपनी करि लीजै।

और कछु मोहि भावत नाहीं, श्रीवृन्दावनरज दीजै॥
खग–मृग–पशु–पंछी या वन के, चरणशरण रख लीजै।
'व्यास' स्वामिनी की छबि निरखत, महल टहलनी कीजै॥

प्रातःकालीन नित्य सत्संग

पूज्यश्री बाबा महाराज श्रीमद् राधासुधानिधि ग्रन्थ पर प्रवचन देते हुए

श्री माताजी गौशाला ; जहाँ हो रहा है ६०,००० गौवंश का मातृवत् पालन

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2021-2023
श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा गुप्ता ओफ़्सेट प्रिंटर्स A- 125/1 , wazipur industriyal area, new delhi- 52 से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित [AGRA/WPP-12/2021-2023 AT 22.12.23]

द्वापरकालीन 'मानशिला' इसी शिला पर राधारानी मान करके बैठ गयी थीं

द्वापरकालीन लीलास्थली 'श्रीमानमन्दिर' के पुनर्निर्माण का कार्य तीव्रगति से चलता हुआ
जिसमें श्रमदान की सेवा करते हुए मन्दिर के साधु एवं साध्वियाँ